मुद्रणाधिकाराः स्वायत्ताः

ओ३म्

संस्कृतप्रबोधः

तत्रायम्

प्रथमोभागः

बदरीदत्त शर्मणा

संस्कृतभाषापरिचयेप्सूनाम्

उपकाराय

प्राकृतभाषया विनिर्मितः

THE

SANSKRIT PRABODHA

or

A Sanskrit Grammar

PART I.

by

P. Badari Datt Sharma.

—*—

SWAMI (MACHINE) PRESS MEERUT

प्रथमावृत्तौ १००० मूल्यम् ≡)

ओ३म्

भूमिका

संस्कृत व्याकरण का विषय महान् है, उस को बतलाने के लिये संस्कृत में अनेक ग्रन्थ एक से एक उत्तम और विशद विद्यमान हैं, परन्तु दैवदुर्विपाक से वा समय के प्रभाव से संस्कृत का प्रचार लुप्त हो जाने से सर्वसाधारण उन से यथेष्ट लाभ नहीं उठा सकते। हिन्दी भाषा में भी, जिस का प्रचार आजकल हमारे देश में सर्वत्र अधिकता से है, संस्कृतव्याकरण के विषय में आज तक कई पुस्तक बन चुके हैं, जिन में से अधिकतर तो सन्धि और विभक्ति तक ही समाप्त हो जाते हैं। यदि किसी ने साहस करके समास, आख्यात, तद्धित और कृदन्त जैसे व्याकरण के गम्भीर विषयों पर कुछ लिखा भी तो वह क्षुधित को चूर्ण के समान होता है, जिस से उस की भूख और भी प्रचण्ड हो जाती है। किसी २ ने अष्टाध्यायी और कौमुदी आदि ग्रन्थों के अनुवाद भी किये हैं, परन्तु उन के भी क्लिष्ट एवं भाषा प्रणाली के प्रतिकूल होने से भाषा जानने वालों के लिये व्याकरण का मार्ग वैसा ही जटिल और दुर्बोध रहता है, जैसा कि उन के लिये संस्कृत में होने से था॥

निदान हिन्दी भाषा में आज तक ऐसा कोई सर्वाङ्ग सम्पन्न व्याकरण का पुस्तक नहीं छपा कि जिस से एक हिन्दी भाषा का जानने वाला संस्कृत व्याकरण के प्रायः सब ही उपयोगी विषयों में क्रमशः आवश्यकतानुसार विज्ञता प्राप्त कर लेवे। बस इसी अभाव को दूर करने के

लिये कतिपय सज्जनों की प्रेरणा से मैं इस पुस्तक को प्रकाशित करता हूं। मेरा विचार इस के चार भागों में व्याकरण के सम्पूर्ण आवश्यक और उपयोगी विषयों को समाप्त करने का है, जिन में से यह प्रथम भाग है, जिस में वर्णोच्चारणशिक्षा, सन्धि, संज्ञा, षड्लिङ्ग और कारक के विषय यथाक्रम दिये गये हैं। शेष भागों में लिङ्गानुशासन, अव्यय, स्त्रीप्रत्यय, समास, आख्यात (क्रिया), तद्धित और कृदन्त तथा इन के अवान्तर भेद इत्यादि विषय यथाक्रम ऐसी सरल रीति पर उपन्यस्त किये जावेंगे कि जिस से पाठकों तथा विद्यार्थियों को संस्कृत व्याकरण का मर्म एवं रहस्य बड़ी सुगमता से अनायास विदित हो सकेगा। यदि संस्कृत के प्रेमी और हिन्दी भाषा के हितैषी इस प्रथम भाग को प्रेम और आदर की दृष्टि से देखेंगे तो इस के शेष भाग भी (जिन में से दूसरा तो लगभग तयार है) मैं कृतज्ञतापूर्वक अपने पाठकों की भेंट करूंगा॥

दूसरी प्रार्थना गुणग्राहक पाठकों की सेवा में यह है कि यदि इस में मुद्रणादि के दोष से अथवा मेरी ही भूल से कहीं पर कोई त्रुटि रह जावे या क्रम व्यतिक्रम हो जावे तो पाठक क्षमा करेंगे और मुझे उस की सूचना देंगे। मैं उन की सम्मति ग्राह्य होने पर यथासम्भव दूसरे संस्करण में उस का संस्कार करूंगा और विज्ञापक का कृतज्ञ हूंगा॥

किं बहुना विज्ञेषु—

बदरीदत्त शर्मा

ओ३म्

अथ संस्कृतप्रबोधः

प्रथमोभागः

तत्र प्रथमाध्यायः

१-भाषा उसे कहते हैं जिस के द्वारा मनुष्य अपने मन के भावों को दूसरों पर प्रकट करता है ॥

२-भाषा वाक्यों से बनती है, वाक्य पदों से और पद अक्षरों से बनाये जाते हैं ॥

३-यद्यपि व्याकरण का मुख्य विषय शब्दानुशासन है तथापि विना वर्णज्ञान के शब्दरचना असम्भव है, अतएव प्रथम वर्णों का उपदेश किया जाता है ॥

अथ वर्णोपदेशः

४-वर्ण, शब्द के उस खण्ड का नाम है जिस का विभाग नहीं होसकता, उसी को अक्षर भी कहते हैं, उस के समझने के लिये बुद्धिमानों ने प्रत्येक भाषा में कुछ सङ्केत नियत कर दिये हैं और उन्हीं को वर्ण या अक्षर के नाम से व्यवहार करते हैं ॥

५-संस्कृत भाषा में सब मिलाकर ४२ वर्ण हैं जो सामान्य रीति पर दो भागों में विभक्त हैं ॥

(१) अच् वा स्वर (२) हल् वा व्यञ्जन ॥

६-जो विना किसी की सहायता के स्वयं बोले जाते हैं वे स्वर और जिन का उच्चारण स्वरों की सहायता से होता है वे व्यञ्जन कहलाते हैं ॥

स्वर वा अच्

एकाक्षर-अ, इ, उ, ऋ, लृ ।

सन्ध्यक्षर-ए, ऐ, ओ, औ ।

व्यञ्जन वा हल्

कवर्ग- क, ख, ग, घ, ङ ।

चवर्ग- च, छ, ज, झ, ञ ।

टवर्ग- ट, ठ, ड, ढ, ण ।

तवर्ग- त, थ, द, ध, न ।

पवर्ग- प, फ, ब, भ, म ।

अन्तःस्थ-य, र, ल, व ।

ऊष्म- श, ष, स, ह ।

७-उक्त वर्णों में अ से लेकर औ तक ९ वर्ण स्वर वा अच् और क से लेकर ह पर्यन्त ३३ वर्ण व्यञ्जन वा हल् कहलाते हैं ॥

८-उक्त ९ स्वरों में पहले पांच एकाक्षर और पिछले चार संध्यक्षर कहलाते हैं । क्योंकि अ + इ मिल कर 'ए'

और अ + ए मिलकर 'ऐ' तथा अ + उ मिलकर 'ओ' और अ + ओ मिल कर 'औ' बनते हैं ॥

९–स्वरों के तीन भेद हैं, ह्रस्व, दीर्घ और प्लुत । फिर इन में से प्रत्येक के तीन २ भेद होते हैं उदात्त, अनुदात्त और स्वरित ॥

१०–जो शीघ्र बोले जावें वे ह्रस्व, जो ह्रस्व से दुगुने काल में बोले जावें वे दीर्घ और जो ह्रस्व से तिगुने काल में बोले जावें वे प्लुत कहाते हैं ॥

११–ऊंचे स्वर से उदात्त, नीचे स्वर से अनुदात्त और मध्यम स्वर से स्वरित बोला जाता है ॥

(क) उक्त रीति से एक २ स्वर नौ २ प्रकार का होता है । यथा–

१–ह्रस्वोदात्त	४–दीर्घोदात्त	७–प्लुतोदात्त
२–ह्रस्वानुदात्त	५–दीर्घानुदात्त	८–प्लुतानुदात्त
३–ह्रस्वस्वरित	६–दीर्घस्वरित	९–प्लुतस्वरित

(ख) फिर अनुनासिक और अननुनासिक भेद से एक २ स्वर अठारह २ प्रकार का हो जाता है अर्थात् ९ भेद अननुनासिक के और ९ अनुनासिक के ॥

(ग) इस रीति पर अ, इ, उ, ऋ; इन चार स्वरों के अठारह २ भेद होते हैं, लृ के दीर्घ न होने से बारह ही भेद होते हैं और ए, ऐ, ओ, औ; ये चारों भी ह्रस्व के न होने से बारह २ प्रकार के ही हैं

वर्णोच्चारणस्थानानि

१२–मुख के जिस भाग से किसी वर्ण का उच्चारण होता है वह उस का 'स्थान' कहलाता है ।

१-अ, कवर्ग, ह और विसर्ग इन का कण्ठ स्थान है।

२-इ, चवर्ग, य और श इन का तालु स्थान है।

३-ऋ, टवर्ग, र और ष इन का मूर्द्धा स्थान है।

४-लृ, तवर्ग, ल और स इन का दन्त स्थान है।

५-उ, पवर्ग और उपध्मानीय इन का ओष्ठ स्थान है।

६-जिह्वामूलीय का जिह्वामूल स्थान है।

७-ए, ऐ, इन दोनों का कण्ठ तालु स्थान है।

८-ओ, औ, इन दोनों का कण्ठोष्ठ स्थान है।

९-वकार का दन्तोष्ठ स्थान है।

१०-ङ, ञ, ण, न, म, इन का स्वस्ववर्गीय स्थानों के अतिरिक्त नासिका स्थान भी है।

११-अनुस्वार का केवल नासिका स्थान है।

१३-अनुस्वार और विसर्ग सदा अच् से परे आते हैं जैसे—संस्यते। यशः॥

१४-यदि क, ख, से पूर्व विसर्ग हों तो वे जिह्वामूलीय और प, फ, से पूर्व हों तो उपध्मानीय होजाते हैं। यथा-य ᳵ करोति। य ᳶ पठति।

१५-'क' से लेकर 'म' पर्यन्त पांचों वर्गों के वर्ण स्पर्श कहलाते हैं। य, र, ल, व की अन्तःस्थ और श, ष, स, ह, की ऊष्म संज्ञा है।

१६-जहां दो वा दो से अधिक हलों में अच् नहीं रहता वहां उन की संयोग संज्ञा है अर्थात् वे अन्त के अच् में मिल जाते हैं। जैसे-" अग्निः " में ग् न् का

"इन्द्रः" में न् द् र् का और "कात्स्न्र्यम्" में र् त् स् न् य् का संयोग है।

१७–संयोग से पूर्व वर्ण यदि ह्रस्व भी हो तो वह गुरु बोला जाता है जैसे–"अग्निः" में 'अ' "इन्द्रः" में 'इ' और "उष्ट्रः" में 'उ' की गुरु संज्ञा है।

१८–जो वर्ण मुख और नासिका से बोले जाते हैं उन को "अनुनासिक" कहते हैं जैसे–ङ, ञ, ण, न, म और अनुस्वार।

१९–जिन वर्णों के स्थान और प्रयत्न समान हों वे परस्पर "सवर्ण" कहलाते हैं जैसे क–ह, च–श इत्यादि॥

२०–अच् और हल् तुल्यस्थानीय होने पर भी परस्पर सवर्ण नहीं होते जैसे–अ–ह, इ–श इत्यादि।

२१–ऋ और ऌ भिन्नस्थानीय होने पर भी परस्पर सवर्ण हैं॥

२२–सुबन्त (संज्ञा) तिङन्त (क्रिया) इन दोनों की 'पद' संज्ञा है।

२३–पदों को मिलाकर प्रयोग करने का नाम "संहिता" है। यथा–विद्ययाऽर्थमवाप्यते।

२४–पदों का विग्रह करके पृथक् २ जो उच्चारण किया जाता है, उस को "अवसान" कहते हैं। यथा–विद्यया–अर्थम्–अव–आप्यते॥



द्वितीयाध्यायः

सन्धिप्रकरणम्

२५-दो वर्णों के परस्पर मिलाप का नाम सन्धि है। संयोग और सन्धि में इतना भेद है कि जहां वर्ण अपने स्वरूप से विना किसी विकार के मिलते हैं उसे संयोग और जहां विकृत होकर अर्थात् उन के स्थान में कोई और आदेश होकर मिलते हैं उसे सन्धि कहते हैं।

२६-संस्कृत भाषा में सन्धि का विशेष प्रयोजन पड़ता है क्योंकि इस में प्रायः पद सन्धियुक्त ही प्रयुक्त होते हैं।

२७-सन्धि तीन प्रकार की है १-अच् सन्धि २-हल् सन्धि ३-विसर्ग सन्धि।

२८-अचों के साथ अच् का जो संयोग होता है उसे अच्-सन्धि कहते हैं।

२९-अच् वा हल् के साथ जो हलों का संयोग होता है उसे हल्सन्धि कहते हैं।

३०-अच् संयुक्त हलों के साथ जो विसर्ग का संयोग होता है उसे विसर्गसन्धि कहते हैं।

१ अच्सन्धिः

३१-अच्सन्धि ७ प्रकार की होती है, १-यण् २-अयादि-चतुष्टय ३-गुण ४-वृद्धि ५-सवर्णदीर्घ ६-पररूप ७-पूर्वरूप

१ यण्

३२-ह्रस्व वा दीर्घ इ, उ, ऋ, से परे कोई भिन्न अच् रहे तो इ, उ, ऋ, को क्रम से य, व, र, आदेश हो जाते हैं और इसी को यण्सन्धि कहते हैं।

नीचे के चक्र से इस का भेद विदित होगा :—

पूर्व	पर	दोनों को मिलाकर जो एक आदेश हुवा	असिद्ध सन्धि	सिद्ध सन्धि
इ	अ	य	दधि+अशनम्	दध्यशनम्
ई	अ	य	देवी+अर्थः	देव्यर्थः
इ	आ	या	अग्नि+आगतः	अग्न्यागतः
ई	आ	या	मही+आलम्बनम्	मह्यालम्बनम्
इ	उ	यु	अति+उत्तमः	अत्युत्तमः
ई	उ	यु	सुधी+उपासनम्	सुध्युपासनम्
इ	ऊ	यू	प्रति+ऊहः	प्रत्यूहः
ई	ऊ	यू	स्त्री+ऊढा	स्त्र्यूढा
इ	ऋ	यृ	अति+ऋणम्	अत्यृणम्
ई	ऋ	यृ	कुमारी+ऋतुमती	कुमार्यृतुमती
इ	ए	ये	प्रति+एकः	प्रत्येकः
ई	ए	ये	कृती+एधते	कृत्येधते
इ	ऐ	यै	अति+ऐश्वर्य्यम्	अत्यैश्वर्य्यम्
ई	ऐ	यै	हस्ती+ऐरावतः	हस्त्यैरावतः
इ	ओ	यो	पचति+ओदनम्	पचत्योदनम्
ई	ओ	यो	सती+ओजः	सत्योजः
इ	औ	यौ	अपि+औदार्यम्	अप्यौदार्यम्
ई	औ	यौ	प्रधी+औ	प्रध्यौ
उ	अ	व	अनु+अर्थम्	अन्वर्थम्
ऊ	अ	व	चमू+अवस्थानम्	चम्वस्थानम्
उ	आ	वा	सु+आगतः	स्वागतः
ऊ	आ	वा	खलपू+आ	खलप्वा
उ	इ	वि	ऋतु+इक्	ऋत्विक्

पूर्व	पर	दोनों को मिलाकर जो एक आदेश हुवा	असिद्ध सन्धि	सिद्ध सन्धि
ऊ	इ	वि	वधू+इच्छा	वध्विच्छा
उ	ई	वी	अनु+ईक्षा	अन्वीक्षा
ऊ	ई	वी	चमू+ईशः	चम्वीशः
उ	ऋ	वृ	वसु+ऋणम्	वस्वृणम्
ऊ	ऋ	वृ	वधू+ऋतुः	वध्वृतुः
उ	ए	वे	अनु+एजनम्	अन्वेजनम्
ऊ	ए	वे	वधू+एकत्वम्	वध्वेकत्वम्
उ	ऐ	वै	वस्तु+ऐक्यम्	वस्त्वैक्यम्
ऊ	ऐ	वै	वधू+ऐश्वर्यम्	वध्वैश्वर्यम्
उ	ओ	वो	तनु+ओकः	तन्वोकः
ऊ	ओ	वो	चमू+ओघः	चम्वोघः
उ	औ	वौ	अनु+औषधम्	अन्वौषधम्
ऊ	औ	वौ	पुनर्भू+औरसः	पुनर्भ्वौरसः
ऋ	अ	र	पितृ+अनुमतिः	पित्रनुमतिः
ऋ	आ	रा	मातृ+आज्ञा	मात्राज्ञा
ऋ	इ	रि	स्वसृ+इङ्गितम्	स्वस्रिङ्गितम्
ऋ	ई	री	दुहितृ+ईहा	दुहित्रीहा
ऋ	उ	रु	भर्तृ+उपदेशः	भर्त्रुपदेशः
ऋ	ऊ	रू	भर्तृ+ऊढा	भर्त्रूढा
ऋ	ए	रे	धातृ+एकत्वम्	धात्रेकत्वम्
ऋ	ऐ	रै	भ्रातृ+ऐश्वर्यम्	भ्रात्रैश्वर्यम्
ऋ	ओ	रो	यातृ+ओकः	यात्रोकः
ऋ	औ	रौ	कर्तृ+औत्कण्ठ्यम्	कर्त्रौत्कण्ठ्यम्

२ अयादिचतुष्टय

३३–ए, ओ, ऐ, औ, इन से परे यदि कोई अच् हो तो इन को क्रम से अय्, अव्, आय्, आव्, ये आदेश हो जाते हैं या ओ, औ से परे प्रत्यय का यकार हो तो भी इन को अव्, आव् आदेश होते हैं। निम्नलिखित चक्र को देखो :—

पूर्व वर्ण	पर वर्ण	आदेश जो पूर्व वर्ण को होता है	असिद्ध सन्धि	सिद्ध सन्धि
ए	अ	अय्	चे–अनम्	चयनम्
ओ	अ	अव्	भो–अनम्	भवनम्
ऐ	अ	आय्	नै–अकः	नायकः
औ	अ	आव्	पौ–अकः	पावकः
ए	इ	अय्	ते–इह	तयिह, तइह *
ओ	इ	अव्	पो–इत्रः	पवित्रः
ऐ	इ	आय्	वै–इति	वायिति
औ	इ	आव्	भौ–इतः	भावितः
ए	उ	अय्	ते–उद्गताः	तयुद्गताः वा त उद्गताः *
ओ	उ	अव्	बन्धो–उत्तिष्ठ	बन्धवुत्तिष्ठ वा बन्धउत्तिष्ठ *
ऐ	उ	आय्	अस्मै–उद्धर	अस्मायुद्धर वा अस्माउद्धर *
औ	उ	आव्	द्वौ–उपमितौ	द्वावुपमितौ वा द्वा उपमितौ *

पूर्व वर्ण	पर वर्ण	आदेश जो पूर्व वर्ण को होता है	असिद्ध सन्धि	सिद्ध सन्धि
ए	ए	अय्	कपे-ए	कपये
ओ	ए	अव्	धेनो—ए	धेनवे
ऐ	ए	आय्	रै-ए	राये
औ	ए	आव्	नौ-ए	नावे
ए	ऐ	अय्	सर्वे-ऐतिहासिकाः	सर्वयैतिहासिकाः
ओ	ऐ	अव्	पटो—ऐः	पटवैः
ऐ	ऐ	आय्	कस्मै-ऐश्वर्यम्	कस्मायैश्वर्यम् वा कस्मा ऐश्वर्यम् *
औ	ऐ	आव्	द्वौ—ऐतिहासिकौ	द्वावैतिहासकौ
ए	ओ	अय्	विश्वे—ओः	विश्वयोः
ओ	ओ	अव्	गो—ओः	गवोः
ऐ	ओ	आय्	रै—ओः	रायोः
औ	ओ	आव्	नौ—ओः	नावोः
ए	औ	अय्	ते—औरस्याः	तयौरस्याः वा त औरस्याः *
ओ	औ	अव्	गो-औ	गावौ
ऐ	औ	आय्	रै-औ	रायौ
औ	औ	आव्	नौ-औ	नावौ
ओ	य्	अव्	गो—यम्	गव्यम्
औ	य्	आव्	नौ—यम्	नाव्यम्

* जहां २ यह चिन्ह है वहां २ एक पक्ष में पदान्त के यकार वकार का लोप हो जाता है ॥

३ गुण

२४-ह्रस्व अथवा दीर्घ अकार से परे ह्रस्व वा दीर्घ इ, उ, ऋ रहें तो अ+इ मिल कर "ए" अ+उ मिलकर "ओ" और अ+ऋ मिल कर "अर्" आदेश होता है और इसी को गुणादेश कहते हैं ॥

पूर्व वर्ण	पर वर्ण	दोनों को मिलाकर जो पृथक् आदेश हुआ	असिद्ध सन्धि	सिद्ध सन्धि
अ	इ	ए	उप+इन्द्रः	उपेन्द्रः
अ	ई	ए	पर+ईशः	परेशः
आ	इ	ए	यथा+इच्छसि	यथेच्छसि
आ	ई	ए	महा+ईश्वरः	महेश्वरः
अ	उ	ओ	जन्म+उत्सवः	जन्मोत्सवः
अ	ऊ	ओ	नव+ऊढा	नवोढा
आ	उ	ओ	महा+उरस्कः	महोरस्कः
आ	ऊ	ओ	गङ्गा+ऊर्मिः	गङ्गोर्मिः
अ	ऋ	अर्	ब्रह्म+ऋषिः	ब्रह्मर्षिः
आ	ऋ	अर्	महा+ऋषिः	महर्षिः

४ वृद्धि

२५-ह्रस्व अथवा दीर्घ अकार से परे ए ओ, ऐ, औ रहें तो अ+ए वा अ+ऐ मिल कर "ऐ" और अ+ओ वा अ+औ मिल कर "औ" आदेश होता है और इस को वृद्धि कहते हैं । कहीं २ अ और ऋ मिल कर "आर्" वृद्धि हो जाती है ॥

पूर्व वर्ण	पर वर्ण	दोनों को मिला कर जो एक आदेश हुआ	असिद्ध सन्धि	सिद्ध सन्धि
अ	ए	ऐ	उप+एधते	उपैधते
अ	ऐ	ऐ	परम+ऐश्वर्यम्	परमैश्वर्यम्
आ	ए	ऐ	यथा+एव	यथैव
आ	ऐ	ऐ	महा+ऐश्वर्यम्	महैश्वर्यम्
अ	ओ	औ	तिल+ओदनम्	तिलौदनम्
अ	औ	औ	तव+औदार्यम्	तवौदार्यम्
आ	ओ	औ	महा+ओजः	महौजः
आ	औ	औ	विश्वपा+औ	विश्वपौ
अ	ऋ	आर्	प्र+ऋणम्	प्रार्णम्
अ	ऋ	आर्	सुखेन+ऋतः	सुखार्तः *

५ सवर्णदीर्घ

३६-यदि ह्रस्व वा दीर्घ अ, इ, उ, ऋ से उस का सवर्ण अक्षर परे रहे तो दोनों मिल कर एक दीर्घ आदेश हो जाता है और इसी को सवर्णदीर्घ कहते हैं ॥

पूर्व वर्ण	पर वर्ण	दोनों मिल कर जो एक आदेश हुआ	असिद्ध सन्धि	सिद्ध सन्धि
अ	अ	आ	पुरुष+अर्थः	पुरुषार्थः
अ	आ	आ	मम+आत्मजः	ममात्मजः

* यह तृतीयासमास में वृद्धि हुई है ॥

पूर्व वर्ण	पर वर्ण	दोनों मिलके कर को दीर्घ आदेश हुआ	असिद्ध सन्धि	सिद्ध सन्धि
आ	अ	आ	यथा+अर्थः	यथार्थः
आ	आ	आ	विद्या+आलयः	विद्यालयः
इ	इ	ई	अधि+इतः	अधीतः
इ	ई	ई	अधि+ईश्वरः	अधीश्वरः
ई	इ	ई	महती+इच्छा	महतीच्छा
ई	ई	ई	मही+ईशः	महीशः
उ	उ	ऊ	बहु+उन्नतः	बहून्नतः
उ	ऊ	ऊ	लघु+ऊर्मिः	लघूर्मिः
ऊ	उ	ऊ	पुनर्भू+उत्तरः	पुनर्भूत्तरः
ऊ	ऊ	ऊ	वधू+ऊढा	वधूढा
ऋ	ऋ	ॠ	पितृ+ऋणम्	पितॄणम्

६ पूर्वरूप

३७–यदि पदान्त के ए, ओ से परे ह्रस्व अकार रहे तो वह अकार ए और ओ में ही मिल जाता है, उस पूर्व रूप में परिणत हुवे अकार को (ऽ) इस चिन्ह से बोधित करते हैं ॥

यथा–मुने–अत्र=मुनेऽत्र । गुरो–अव=गुरोऽव ॥

७ पररूप

३८–जैसे परवर्णका पूर्व वर्णमें मिल जाना पूर्वरूप कहलाता है, इसी प्रकार पूर्ववर्ण का परवर्ण में मिल जाना पर-रूप कहलाता है। पररूपसन्धि का कोई विशेष नियम

नहीं है, यह कहीं गुण, कहीं वृद्धि और कहीं सवर्ण दीर्घ के स्थान में भी हो जाया करती है ॥

गुण के स्थान में पररूप। यथा—दद्ा-उः=ददुः । पपा—उः=पपुः । ययाा-उः=ययुः ॥

वृद्धि के स्थान में पररूप । यथा-प्र-एजते=प्रेजते । उप-ओषति=उपोषति । इह-एव=इहेव । का-ओम्=कोम् । अद्य-ओढ़ा=अद्योढ़ा । स्थूल-ओतुः=स्थूलोतुः । बिम्ब-ओष्ठः=बिम्बोष्ठः ॥

सवर्णदीर्घ के स्थान में पररूप। यथा-शक-अन्धुः= शकन्धुः । कुल-अटा=कुलटा । सीम-अन्तः=सीमन्तः । पच-अन्ति=पचन्ति । यज-अन्ति=यजन्ति ॥

८ प्रकृतिभाव

३९-इन के अतिरिक्त प्रायः स्थल ऐसे भी हैं कि जहां सन्धि नहीं होती, उस को प्रकृतिभाव कहते हैं । जहां पूर्व और पर वर्णों में कोई विकार नहीं होता किन्तु वे अपने स्वरूप से स्थित रहते हैं वहां प्रकृति-भाव होता है यथा-इ-इन्द्रः । मुनी-इमौ । अमी-आसते । अहो-ईशाः । इत्यादि उदाहरणों में इ, मुनी, अमी और अहो इन शब्दों की प्रगृह्य संज्ञा होने से सवर्णदीर्घ, यण् और अव् आदेश न हुवे किन्तु प्रकृतिभाव हो गया ॥

४०-जहां प्लुत से आगे अच् रहे वहां भी सन्धि नहीं होती। जैसे-एहि शिष्य ३-अत्र छात्राः पठन्ति। यहां प्लुत संज्ञक अकार के होने से सवर्णदीर्घ आदेश न हुआ किन्तु प्रकृतिभाव हो गया ॥

२ हल्सन्धिः

संस्कृत में हल्सन्धि के अनेक भेद हैं जिन में से कुछ एक नीचे लिखे जाते हैं।

४१–यदि सकार और तवर्ग को शकार और चवर्ग का योग हो तौ उन को क्रम से शकार और चवर्ग ही हो जाते हैं। यथा–कस्+शेते=कश्शेते। कस्+चित्=कश्चित्। उत्–शिष्टः=उच्छिष्टः*। सत्+चित्=सच्चित्। उत्+छिन्नः=उच्छिन्नः। उत्+ज्वलः=उज्ज्वलः। शत्रून्+जयति=शत्रूञ्जयति॥

४२–यदि सकार और तवर्ग को षकार और टवर्ग का योग हो तौ उन को क्रम से षकार और टवर्ग ही होजाते हैं। यथा–कस्+षष्ठः=कष्षष्ठः। वृक्षस्+टीकते=वृक्षष्टीकते। पेष्+ता–पेष्टा। प्रतिष्+था=प्रतिष्ठा। पूष्+नः=पूष्णः। उत्+टङ्कनम्=उट्टङ्कनम्। उत्+डीनः=उड्डीनः॥

४३–यदि तवर्ग से लकार परे रहे तौ उस को लकार ही आदेश होजाता है। तत्+लयः=तल्लयः। भवान्+लिखति=भवाँल्लिखति। यहां अनुनासिक न को अनुनासिक ही लँ हुवा॥

४४–यदि किसी वर्ग के प्रथम वा तृतीय वर्ण से कोई अनुनासिक वर्ण परे रहे तौ पूर्व वर्ण को उस के ही वर्ग का सानुनासिक वर्ण होजाता है। वाग्+मयम्=वाङ्मयम्। सम्राट्–नयति=सम्राण्नयति। जगत्–नाथः=जगन्नाथः। चित्–मात्रः=चिन्मात्रः। तद्–मयः=तन्मयः॥

* यहां ४७ वें नियम से 'श' को 'छ' हो गया॥

४५-यदि किसी वर्ग के पहले वर्ण से उसी या अन्य वर्गों के तीसरे चौथे वर्ण अथवा अच् परे रहे तौ उस को अपने वर्ग का तीसरा वर्ण होजाता है। यथा-प्राक्-गमनम्=प्राग्गमनम् । वाक्-दण्डः=वाग्दण्डः । सम्यक्-धृतः=सम्यग्धृतः । उदक्-अयनम्=उदगयनम् । अच्-अन्तः=अजन्तः । उत्-गमनम्=उद्गमनम् । अत्-अन्तः=अदन्तः । उत्-भवनम्=उद्भवनम् । अप्-जः=अब्जः ॥

४६-यदि किसी वर्ग के पहले, दूसरे, तीसरे और चौथे वर्ण से हकार परे रहे तौ उस को उसी वर्ग का चतुर्थ वर्ण होजाता है यथा-वाग्-हसति=वाग्घसति । अच्+हल्=अज्झल् । उत्+हरणम्=उद्धरणम् । अप्-हरणम्=अब्भरणम् ॥

४७-वर्ग के पहले और तीसरे वर्ण से शकार परे हो तौ उस को छकार हो जावे, यदि उस से परे कोई अच् वा अन्तःस्थ वा अनुनासिक वर्ण हो । वाक्-शरः=वाक्छरः । हृत्-शयः=हृच्छयः । महत्-शृङ्गम्=महच्छृङ्गम् ॥

४८-यदि वर्ग के तृतीय वर्ण से परे वर्ग के प्रथम, द्वितीय वर्ण रहें तौ तृतीय वर्ण को भी प्रथम वर्ण हो जाता है यथा-उद्-थानम्=उत्थानम् । उद्-तम्भनम्=उत्तम्भनम् ॥

४९-यदि ह्रस्व अच् से परे छकार हो तौ वह चकार से संयुक्त हो जावे । यथा-परि-छेदः=परिच्छेदः । अव-छेदः=अवच्छेदः । गृह-छिद्रम्-गृहच्छिद्रम् । तरु-छाया=तरुच्छाया ॥

५०-यदि अपदान्त अनुस्वार से परे पांचों वर्गों में से किसी वर्ग का कोई वर्ण हो तो उसे उसी वर्ग का अनुनासिक वर्ण हो जाता है । यथा-अं-कितः= अङ्कितः । वं-चितः=वञ्चितः । कुं-ठितः=कुण्ठितः । नं-दितः=नन्दितः । कं-पितः=कम्पितः । पदान्त में विकल्प से होता है यथा-त्वं करोषि । त्वङ्करोषि ॥

५१-पदान्त मकार को यदि उस से कोई हल् परे हो तो अनुस्वार आदेश हो जाता है । यथा-गुरुम्-वन्दे=गुरुं वन्दे । वनम्-यासि=वनं यासि । धनम्-देहि=धनं देहि ॥

५२-अपदान्त नकार को यदि उस से कोई हल्, अनुनासिक और अन्तःस्थ वर्णों को छोड़ कर परे हो तो उस को भी अनुस्वार आदेश होजाता है । यथा-पयान्-सि=पयांसि । यशान्-सि=यशांसि । मन्-स्यते= मंस्यते । इत्यादि ॥

३ विसर्गसन्धिः

५३-यदि इकार उकार पूर्वक विसर्ग से परे क, ख, वा प, फ, रहें तो विसर्ग को प्रायः मूर्द्धन्य ष हो जाता है । निः-कण्टकः=निष्कण्टकः । निः-क्रयः=निष्क्रयः । निः-पापः=निष्पापः । निः-फलम्=निष्फलम् । दुः-कर्म=दुष्कर्म । दुः-पीतम्=दुष्पीतम् । दुः-फलम्= दुष्फलम् ॥

५४-च, छ, परे हों तो विसर्ग को 'श्' और त, परे हो तो 'स्' आदेश हो जाता है । निः-चयः=निश्चयः । निः-

चलः=निश्चलः। निः-छलः=निश्छलः। निः-तारः=निस्तारः।

५१-यदि विसर्ग से वर्ग के तृतीय, चतुर्थ वर्ण या अन्तःस्थ, ह और अनुनासिक वर्ण परे हों तो विसर्ग को 'ओ' आदेश हो जाता है। यथा-मनः-गतः=मनोगतः। मनः-जवः=मनोजवः। यशः-दा=यशोदा। पयः-दः=पयोदः। अश्वः-धावति=अश्वोधावति। मनः-भवः=मनोभवः। नरः-याति=नरोयाति। मनः-रथः=मनोरथः। मनः-लयः-मनोलयः। पवनः-वाति=पवनोवाति। मनः-हरः=मनोहरः। मनः-नीतः=मनोनीतः। तेजः-मयः=तेजोमयः। इत्यादि॥

५६-यदि ह्रस्व अकार से परे विसर्ग हों और उस से परे फिर ह्रस्व अकार हो तो विसर्ग को 'ओ' आदेश हो जाता है और पर अकार उसी में मिल जाता है। यथा-मनः- अवधानम्=मनोऽवधानम्। शिष्यः-अत्र=शिष्योऽत्र। शिवः-अर्च्यः=शिवोऽर्च्यः। धर्मः-अनुष्ठेयः=धर्मोऽनुष्ठेयः॥

५७-यदि अकार को छोड़ कर अन्य स्वरों से परे विसर्ग हों और उन से परे वर्ग के तृतीय, चतुर्थ वा ह, य, व, ल, न, म, वा स्वर वर्ण हों तो विसर्ग के स्थान में रेफ आदेश होता है। यथा-निः-गुणः=निर्गुणः। निः-जलम्=निर्जलम्। निः-झरः=निर्झरः। दुः-दान्तः=दुर्दान्तः। निः-धनः=निर्धनः। तरोः-वनम् तरोर्वनम्। नि-भयः=निर्भयः। निः-हरणम्=निर्हरणम्। निः-यातः=निर्यातः। निः-वचनम्=निर्वचनम्। दुः-गः=दुर्गः। निः—नयः=निर्णयः। निः—मलः=निर्मलः। निः—अर्थः=निरर्थः। निः—आकारः=

निराकारः । निः—इच्छः=निरिच्छः । निः—ईहः=निरीहः । निः—उपायः=निरुपायः । निः—औषधम्=निरौषधम् । इत्यादि ॥

५८–अ, इ, उ से परे विसर्ग हों और उन से परे रकार हो तो विसर्ग का लोप होकर उस से पूर्व वर्ण को दीर्घ हो जाता है । यथा–पुनः–रक्तम्=पुनारक्तम् । निः–रसः=नीरसः । निः–रुजः=नीरुजः । इन्दुः—राजते=इन्दूराजते ॥

५९–अ से परे विसर्ग का लोप हो जाता है जब कि उस से परे ह्रस्व 'अ' को छोड़ कर कोई स्वर रहे । यथा–कः–आस्ते=क आस्ते । यः–ईशः=यईशः । सः-उत्सवः=सउत्सवः । वः–ऋषिः=व ऋषिः । सूर्यः–एकः=सूर्य एकः । सः–ऐक्षत=स ऐक्षत । यतः–ओषधिः=यत ओषधिः ॥

६०–सः और एषः के विसर्ग का हल् परे हो तो भी लोप हो जाता है । यथा–सः–गच्छति । सगच्छति । एषः–क्रीडति=एषक्रीडति । इत्यादि ॥



तृतीयाऽध्यायः

अथ शब्दानुशासनम्

६१–जो कानसे सुनाई देवे उसे शब्द कहते हैं वह दो प्रकार का है (१) सार्थक, (२) निरर्थक । सार्थक शब्द की पद संज्ञा है और उसी का विवेचन व्याकरण शास्त्र में किया गया है ॥

६२–पद के दो भेद हैं १ संज्ञा २ क्रिया ।।

६३-संज्ञा वस्तु के नाम को कहते हैं और वह लिङ्ग वचन और कारक से सम्बन्ध रखती है। जैसे-"अश्वत्थः" यह एक वृक्ष विशेष का नाम है। "आम्रम्" यह एक फल विशेष का नाम है। "शुण्ठिः" यह एक ओषधि विशेष का नाम है॥

६४-क्रिया का लक्षण यह है कि जिस से कुछ करना पाया जाय और वह काल, पुरुष और वचन से सम्बन्ध रखती है। क्रिया का सविस्तर वर्णन तीसरे भाग में होगा॥

६५-संज्ञा और क्रिया के सिवाय सार्थक शब्दों में अव्यय की भी गणना है। अव्ययों का वर्णन दूसरे भाग में होगा॥

संज्ञा

६६-संज्ञा के तीन भेद हैं-रूढि, यौगिक और योगरूढि॥

६७-रूढि संज्ञा उसे कहते हैं जो किसी वस्तु के लिये नियत हो और उसका कोई खण्ड सार्थक न हो। जैसे-"निम्बः" यह एक वृक्ष विशेष की संज्ञा है यदि इस में से निम् और बः को अलग २ कर दिया जाय तो इन का कुछ अर्थ न होगा॥

६८-यौगिक संज्ञा उसे कहते हैं जो दो शब्दों के योग से अथवा शब्द और प्रत्यय के योग से बनी हो। यथा-प्रियंवदः। मनोरमः। जलचरः। वक्ता। कामुकः। लोलुपः। इत्यादि॥

६९-योगरूढि संज्ञा वह कहलाती है जो स्वरूप में तो यौगिक के समान हो, पर अर्थ में यौगिक के समान अवयवार्थ को न लेकर संकेतितार्थ का प्रकाश

करती हो। जैसे—पङ्कजः। जलदः। हिमालयः। वर्षाभूः। इत्यादि॥

नोट—यद्यपि पङ्क से कमल के अतिरिक्त और भी अनेक पदार्थ उत्पन्न होते हैं परन्तु पङ्कज केवल कमल की ही संज्ञा है। एवं जल को नदी, कूप तड़ागादि भी देते हैं परन्तु "जलद" केवल बादल की ही संज्ञा है। तथा हिम और भी अनेक स्थानों में होता है परन्तु "हिमालय" केवल उसी पर्वत का नाम है जो भारतवर्ष की उत्तरीय सीमा में विद्यमान है। इसी प्रकार वर्षा में अनेक जन्तु उत्पन्न होते हैं परन्तु "वर्षाभू" केवल मेडक की ही संज्ञा है।

७०—इन के अतिरिक्त संज्ञा के ५ भेद और भी हैं जिन के नाम ये हैं १—जातिवाचक २—व्यक्तिवाचक ३—गुणवाचक ४—भाववाचक ५—सर्वनाम।

७१—जातिवाचक संज्ञा वह है जिससे जातिमात्र (जिन्सभर) का बोध हो अर्थात् उस से सब समानाकृति व्यक्तियां जानी जावें। जैसे—मनुष्यः। अश्वः। गौः। वृक्षः। पुस्तकम्। वस्त्रम्। इत्यादि।

७२—व्यक्तिवाचक संज्ञा वह है जिस से व्यक्ति (जाति के एक देश) का ग्रहण हो। जैसे—देवदत्तः। विष्णुमित्रः। इन्द्रप्रस्थः। गङ्गा। यमुना। आदि।

७३—गुणवाचक संज्ञा वह है जिस से किसी वस्तु का गुण प्रकट हो, अतएव इस को विशेषण भी कहते हैं। यह संज्ञा अकेली नहीं आती किन्तु अपने विशेष्य के साथ में आती है। यथा—नीलोत्पलम्। कृष्णसर्पः। पीतवर्णः। वक्रचन्द्रः। उच्चैःस्वरः। उत्तमपुरुषः। इत्यादि॥

७४-भाववाचक संज्ञा वह है जो पदार्थ के धर्म एवं स्वभाव को बतलावे अथवा उस से किसी व्यापार का बोध हो। यथा-गौरवम्। लाघवम्। जाड्यम्। पाण्डित्यम्। मानुष्यम्। इत्यादि॥

७५-सर्वनाम संज्ञा उसे कहते हैं जो और संज्ञाओं के बदले में कही जावे जैसे-तद्, यद्, एतद्, इदम्, अदस्, युष्मद्, अस्मद्, अन्य, अन्यतर, इतर, कतर, कतम, किम्, एक, द्वि, इत्यादि॥

नोट—सर्वनाम संज्ञा का प्रयोजन यह है कि इस से वाक्य में लाघव और लालित्य आजाता है और पुनरुक्ति नहीं होती अर्थात् एक ही शब्द का वार २ प्रयोग नहीं करना पड़ता। यथा-"देवदत्त आगतः स च स्वकीयं पुस्तकं गृहीत्वा गतः" देवदत्त आयाथा और वह अपना पुस्तक लेकर गया। यहां उत्तर वाक्य में पुनः देवदत्तशब्द का प्रयोग नहीं करना पड़ा किन्तु "तद्" सर्वनाम से उस का परामर्श होगया॥

७६-सर्वनाम शब्दों में लिङ्ग नियत नहीं होता किन्तु जिन के स्थान में वे आते हैं उन का जो लिङ्ग होता है वही सर्वनाम का भी। यथा-एषा शाटी। एषोऽश्वः। एतत् पुस्तकम्।

७७-तीनों पुरुष जिन का क्रिया में काम पड़ेगा इन्हीं सर्वनामों से निर्देश किये जाते हैं। यथा-"अस्मद्" से उत्तम पुरुष, युष्मद् से मध्यम पुरुष और अस्मद् युष्मद् से भिन्न और किसी सर्वनाम से प्रथम वा अन्य पुरुष का निर्देश किया जाता है॥

लिङ्गानि

७८–संस्कृत भाषा में तीन लिङ्ग होते हैं जिन के नाम ये हैं–पुँल्लिङ्ग, स्त्रीलिङ्ग और नपुंसकलिङ्ग ॥

७९–पुरुष के लिये पुँल्लिङ्ग, स्त्री के लिये स्त्रीलिङ्ग और दोनों से विलक्षण व्यक्ति वा द्रव्य के लिये प्रायः नपुंसक लिङ्ग का प्रयोग किया जाता है। यथा–गुरुः। विद्या। सूत्रम् ॥

८०–संस्कृत में प्रायः शब्द नियतलिङ्ग होते हैं, जिनका विशेष परिचय लिङ्गानुशासन के अवलोकन से होगा, जोकि इस पुस्तक के दूसरे भाग में दिया जायगा ॥

वचनानि

८१–संस्कृत में लिङ्ग के ही समान वचन भी तीन होते हैं, एकवचन, द्विवचन और बहुवचन ॥

८२–जिस के कहने से एक व्यक्ति वा वस्तु का बोध हो वह एकवचन, जो दो पदार्थों को जनावे वह द्विवचन और जो दो से अधिक वस्तुओं के लिये प्रयुक्त होता है, वह बहुवचन कहलाता है। यथा–वृक्षः। वृक्षौ। वृक्षाः ॥

८३–जाति के अभिधान में एकवचन को बहुवचन भी हो जाता है। यथा–मनुष्यः=मनुष्याः=अश्वः=अश्वाः।

८४–युष्मद् और अस्मद् शब्द के एकवचन और द्विवचन को भी पक्ष में बहुवचन हो जाता है। यथा–अहं ब्रवीमि=वयं ब्रूमः। आवां ब्रूवः=वयं ब्रूमः। त्वं गच्छसि=यूयं गच्छथ। युवां गच्छथः=यूयं गच्छथ ॥

८५-आदरार्थ में भी एक वचन को बहुवचन होजाता है। यथा-गुरुरभिवादनीयः=गुरवोऽभिवादनीयाः॥

प्रातिपदिकानि

८६-धातु प्रत्यय से वर्जित केवल अर्थवान् शब्द को प्रातिपदिक कहते हैं और उसी की रूढ़ि संज्ञा भी है। यथा-" कुण्डम् " यह किसी द्रव्य का नाम है। " कपिशः " यह किसी गुण का वाचक है॥

८७-कृदन्त, तद्धितान्त और समासान्त की भी प्रातिपदिक संज्ञा है। कृदन्त-शिष्यः। स्तुत्यः। इत्यादि। तद्धितान्त-औपगवः। आदित्यः। इत्यादि। समासान्त-राजपुरुषः। विचित्रवीर्यः। इत्यादि॥

८८-प्रातिपदिक (संज्ञा) से विभक्तिसूचक स्वादि २१ प्रत्यय होते हैं। विभक्तियां सात हैं प्रत्येक विभक्ति के तीन २ वचन होते हैं जिन के प्रत्यय २१ हैं॥

विभक्तिसूचक स्वादि २१ प्रत्यय

विभक्तयः	एकवचनम्	द्विवचनम्	बहुवचनम्
प्रथमा	सु=स्	औ	जस्=अस्
द्वितीया	अम्	औ	शस्=अस्
तृतीया	टा=आ	भ्याम्	भिस्
चतुर्थी	ङे=ए	भ्याम्	भ्यस्
पञ्चमी	ङस्=अस्	भ्याम्	भ्यस्
षष्ठी	ङस्=अस्	ओस्	आम्
सप्तमी	ङि=इ	ओस्	सुप्=सु

८९-प्रथमा के एकवचन " सु " से लेकर सप्तमी के बहुवचन " सुप् " तक २१ प्रत्यय होते हैं। इन के समाहार को सुप् प्रत्याहार कहते हैं। ये जिन के अन्त में हों उस को सुबन्त कहते हैं और उस की पद संज्ञा भी है॥

९०-अब हम अजन्तादि क्रम से सुप् प्रत्याहार का (प्रातिपदिक) संज्ञा शब्दों के साथ योग होने से जो परिणाम होता है उसे ६ भागों में विभक्त करके दिखलावेंगे॥

१-अजन्तपुंल्लिङ्गम्

अकारान्त 'देव' शब्द

विभक्तयः	एकवचनम्	द्विवचनम्	बहुवचनम्	कारकाणि
प्रथमा	देवः	देवौ	देवाः	कर्त्ता
द्वितीया	देवम्	देवौ	देवान्	कर्म
तृतीया	देवेन	देवाभ्याम्	देवैः	करणम्
चतुर्थी	देवाय	देवाभ्याम्	देवेभ्यः	सम्प्रदानम्
पञ्चमी	देवात्	देवाभ्याम्	देवेभ्यः	अपादानम्
षष्ठी	देवस्य	देवयोः	देवानाम्	सम्बन्धः
सप्तमी	देवे	देवयोः	देवेषु	अधिकरणम्
प्रथमा	हे देव !	हे देवौ !	हे देवाः !	सम्बोधनम्

९१-प्रायः सब अकारान्त शब्द देव शब्द के ही समान विभक्तियों में परिणत होते हैं केवल सर्वनाम संज्ञक अकारान्त शब्दों में कुछ भेद होता है॥

सर्वनामसंज्ञक "सर्व" शब्द

१-सर्वः	सर्वौ	सर्वे	कर्त्ता
२-सर्वम्	"	सर्वान्	कर्म
३-सर्वेण	सर्वाभ्याम्	सर्वैः	करणम्
४-सर्वस्मै	"	सर्वेभ्यः	सम्प्रदानम्
५-सर्वस्मात्	"	"	अपादानम्
६-सर्वस्य	सर्वयोः	सर्वेषाम्	सम्बन्धः
७-सर्वस्मिन्	"	सर्वेषु	अधिकरणम्
८-हे सर्व !	हे सर्वौ !	हे सर्वे !	सम्बोधनम्

९२-प्रायः सर्व के ही समान अन्य अकारान्त सर्वनामों के भी रूप होते हैं परन्तु पूर्वादि ९ शब्दों के प्रथमा के बहुवचन तथा पञ्चमी और सप्तमी के एकवचन में दो २ रूप होते हैं। यथा-पूर्वे=पूर्वाः। पूर्वस्मात्= पूर्वात्। पूर्वस्मिन्=पूर्वे। शेष सब सर्व के तुल्य। इसी प्रकार पर, अवर, दक्षिण, उत्तर, अपर, अधर, स्व और अन्तर शब्दों के भी समझो। उभशब्द केवल द्विवचनान्त है॥

९३-जिन अकारान्त शब्दों में कुछ भेद है अब उन के रूप लिखते हैं॥

निर्जरशब्द-

एकव०	द्विव०	बहुव०
१-निर्जरः	निर्जरौ, निर्जरसौ	निर्जराः, निर्जरसः
२-निर्जरम्, निर्जरसम्	" "	निर्जरान् "
३-निर्जरेण, निर्जरसा	निर्जराभ्याम्	निर्जरैः

४-निर्जराय, निर्जरसे	निर्जराभ्याम्		निर्जरेभ्यः
५-निर्जरात्, निर्जरसः	,,		,,
६-निर्जरस्य, ,,	निर्जरयोः,सोः		निर्जराणाम् निर्जरसाम्
७-निर्जरे, निर्जरसि	,,	,,	निर्जरेषु

सं०-हे निर्जर ! इत्यादि प्रथमावत्

पाद शब्द

१-पादः	पादौ	पादाः
२-पादम्,	,,	पादान्, पदः
३-पादेन,पदा	पादाभ्याम्,पद्भ्याम्	पादैः, पद्भिः
४-पादाय, पदे	,, ,,	पादेभ्यः,पद्भ्यः
५-पादात्-द्, पदः	,, ,,	,, ,,
६-पादस्य, ,,	पादयोः, पदोः	पादानाम्, पदाम्
७-पादे, पदि	,, ,,	पादेषु, पत्सु

सं० हे पाद ! इत्यादि ॥

दन्त शब्द

१-दन्तः	दन्तौ	दन्ताः
१-दन्तम्	,,	दन्तान्, दतः
३-दन्तेन,दता	दन्ताभ्याम्,दद्भ्याम्	दन्तैः, दद्भिः
४-दन्ताय,दते	,, ,,	दन्तेभ्यः,दद्भ्यः
५-दन्तात्-द्,दतः	,, ,,	,, ,,
६-दन्तस्य, ,,	दन्तयोः, दतोः	दन्तानाम्,दताम्
७-दन्ते, दति	,, ,,	दन्तेषु, दत्सु

सं०-हे दन्त ! इत्यादि ॥

मास शब्द

१-मासः	मासौ	मासाः
२-मासम्	"	मासान्, मासः
३-मासेन, मासा	मासाभ्याम्, माभ्याम्	मासैः, माभिः
४-मासाय, मासे	" "	मासेभ्यः माभ्यः
५-मासात्-द्, मासः	" "	" "
६-मासस्य, "	मासयोः, मासोः	मासानाम्, मासाम्
७-मासे, मासि	" "	मासेषु, मास्सु, माःसु

सं०-हे मास ! इत्यादि ॥

यूष शब्द

१-यूषः	यूषौ	यूषाः
२-यूषम्	"	यूषान्, यूष्णः
३-यूषेण, यूष्णा,	यूषाभ्याम्, यूषभ्याम्	यूषैः, यूषभिः
४-यूषाय, यूष्णे,	" "	यूषेभ्यः, यूषभ्यः
५-यूषात्-द्, यूष्णः	" "	" "
६-यूषस्य, "	यूषयोः, यूष्णोः	यूषाणाम्, यूष्णाम्
७-यूषे, यूष्णि	" "	यूषेषु, यूषसु

सं०-हे यूष ! इत्यादि ॥

आकारान्त "विश्वपा" शब्द ।

१-विश्वपाः	विश्वपौ	विश्वपाः
२-विश्वपाम्	"	विश्वपः
३-विश्वपा	विश्वपाभ्याम्	विश्वपाभिः

४–विश्वपे	विश्वपाभ्याम्	विश्वपाभ्यः
५–विश्वपः	”	”
६– ”	विश्वपोः	विश्वपाम्
७–विश्वपि	”	विश्वपासु
१–हे विश्वपाः !	हे विश्वपौ !	हे विश्वपाः

९४–विश्वपा के ही समान अन्य सब आकारान्त शब्दों के रूप होते हैं ॥

ह्रस्व इकारान्त "अग्नि" शब्द

१ अग्निः	अग्नी	अग्नयः
२ अग्निम्	”	अग्नीन्
३ अग्निना	अग्निभ्याम्	अग्निभिः
४ अग्नये	”	अग्निभ्यः
५ अग्नेः	”	”
६ ”	अग्न्योः	अग्नीनाम्
७ अग्नौ	”	अग्निषु
१ हे अग्ने !	हे अग्नी !	हे अग्नयः !

९५–प्रायः ह्रस्व इकारान्त शब्दों के रूप अग्नि शब्द के तुल्य होते हैं परन्तु सखि, पति, कति, त्रि और द्वि शब्दों में कुछ भेद है ॥

ह्रस्व इकारान्त "सखि" शब्द

१ सखा	सखायौ	सखायः
२ सखायम्	”	सखीन्
३ सख्या	सखिभ्याम्	सखिभिः

४	सख्ये	सखिभ्याम्	सखिभ्यः
५	सख्युः	,,	,,
६	,,	सख्योः	सखीनाम्
७	सख्यौ	,,	सखिषु
१	हे सखे !	हे सखायौ !	हे सखायः !

९६-पति शब्द में इतना भेद है कि उस के तृतीया, चतुर्थी, पञ्चमी, षष्ठी और सप्तमी के एकवचन में सखि शब्द के समान और शेष सब रूप अग्नि शब्द के समान होते हैं। कति और त्रि शब्द बहुवचनान्त हैं उन के रूप इस प्रकार होंगे—कति १। कति २। कतिभिः ३। कतिभ्यः ४। कतिभ्यः ५। कतीनाम् ६। कतिषु ७। त्रयः १। त्रीन् २। त्रिभिः ३। त्रिभ्यः ४। त्रिभ्यः ५। त्रयाणाम् ६। त्रिषु ७। द्वि शब्द केवल द्विवचनान्त है उस के रूप इस प्रकार होंगे। द्वौ २ द्वाभ्याम् ३ द्वयोः २॥

दीर्घ ईकारान्त "प्रधी" शब्द

१	प्रधीः	प्रध्यौ	प्रध्यः
२	प्रध्यम्	,,	,,
३	प्रध्या	प्रधीभ्याम्	प्रधीभिः
४	प्रध्ये	,,	प्रधीभ्यः
५	प्रध्यः	,,	,,
६	,,	प्रध्योः	प्रध्याम्
७	प्रध्यि	,,	प्रधीषु
१	हे प्रधीः !	हे प्रध्यौ !	हे प्रध्यः

९७–प्रायः ईकारान्त शब्दों के रूप 'प्रधी' शब्द के समान होते हैं परन्तु "पपी" शब्द के द्वितीया के एकवचन और बहुवचन तथा सप्तमी के एकवचन में क्रमशः–पपीम् । पपीन् । पपी । ये रूप होते हैं । शेष सब रूप 'प्रधी' के समान हैं । 'सुधी' शब्द में कुछ विशेष है ॥

१–सुधीः	सुधियौ	सुधियः
२–सुधियम्	"	"
३–सुधिया	सुधीभ्याम्	सुधीभिः
४–सुधिये, सुधियै	"	सुधीभ्यः
५–सुधियः, सुधियाः	"	"
६– " "	सुधियोः	सुधीनाम्, सुधियाम्
७–सुधियि। सुधियाम्	"	सुधीषु
१–हे सुधीः !	हे सुधियौ !	हे सुधियः !

ह्रस्व उकारान्त "वायु" शब्द

१–वायुः	वायू	वायवः
२–वायुम्	"	वायून्
३–वायुना	वायुभ्याम्	वायुभिः
४–वायवे	"	वायुभ्यः
५–वायोः	"	"
६– "	वाय्वोः	वायूनाम्
७–वायौ	"	वायुषु
१–हे वायो !	हे वायू !	हे वायवः !

९८–वायु के ही समान प्रायः सब उकारान्त शब्दों के रूप होते हैं परन्तु 'क्रोष्टु' शब्द में कुछ भेद है ॥

१-क्रोष्टा	क्रोष्टारौ	क्रोष्टारः
२-क्रोष्टारम्	"	क्रोष्टून्
३-क्रोष्ट्रा, क्रोष्टुना	क्रोष्टुभ्याम्	क्रोष्टुभिः
४-क्रोष्ट्रे, क्रोष्टवे	"	क्रोष्टुभ्यः
५-क्रोष्टुः, क्रोष्टोः	"	"
६- " "	क्रोष्ट्रोः। क्रोष्ट्वोः	क्रोष्टूनाम्
७-क्रोष्टरि, क्रोष्टौ	" "	क्रोष्टुषु
८-हे क्रोष्टः!	हे क्रोष्टारौ	हे क्रोष्टारः।

दीर्घ ऊकारान्त " पुनर्भू " शब्द

१-पुनर्भूः	पुनर्भ्वौ	पुनर्भ्वः
२-पुनर्भ्वम्	"	"
३-पुनर्भ्वा	पुनर्भूभ्याम्	पुनर्भूभिः
४-पुनर्भ्वे	"	पुनर्भूभ्यः
५-पुनर्भ्वः	"	"
६- "	पुनर्भ्वोः	पुनर्भ्वाम्
७-पुनर्भ्वि	"	पुनर्भूषु
हे पुनर्भूः!	हे पुनर्भ्वौ!	हे पुनर्भ्वः!

९९-पुनर्भू के ही समान खलपू, वर्षाभू, दृन्भू और करभू आदि अन्य ऊकारान्त शब्दों के रूप होते हैं। " स्वयम्भू " शब्द में कुछ विशेष है॥

१-स्वयम्भूः	स्वयम्भुवौ	स्वयम्भुवः
२-स्वयम्भुवम्	"	"
३-स्वयम्भुवा	स्वयम्भूभ्याम्	स्वयम्भूभिः

४–स्वयम्भुवे	स्वयम्भूभ्याम्	स्वयम्भूभ्यः
५–स्वयम्भुवः	”	”
६– ”	स्वयम्भुवोः	स्वयम्भुवाम्
७–स्वयम्भुवि	”	स्वयम्भूषु
१–हे स्वयम्भूः !	हे स्वयम्भुवौ !	हे स्वयम्भुवः !

ऋकारान्त “ धातृ ” शब्द

१–धाता	धातारौ	धातारः
२–धातारम्	”	धातॄन्
३–धात्रा	धातृभ्याम्	धातृभिः
४–धात्रे	”	धातृभ्यः
५–धातुः	”	”
६– ”	धात्रोः	धातॄणाम्
७–धातरि	”	धातृषु
हे धातः !	हे धातारौ !	हे धातारः !

१००–धातृ शब्द के ही समान नप्तृ, त्वष्टृ, क्षत्तृ, होतृ, पोतृ, प्रशास्तृ और उद्गातृ आदि ऋकारान्त शब्दों के रूप होते हैं, परन्तु पितृ, भ्रातृ, जामातृ और नृ शब्दों की उपधा को प्रथमा के द्विवचन से लेकर द्वितीया के द्विवचन तक दीर्घ नहीं होता । यथा–पितरौ । पितरः । पितरम् । पितरौ । इसी प्रकार भ्रातृ जामातृ और नृ शब्द में भी समझो । तथा “ नृ ” शब्द को षष्ठी के बहुवचन में नृणाम् । नॄणाम् । ये दो रूप होते हैं । शेष सब रूप धातृ शब्द के तुल्य समझने चाहियें ॥

ओकारान्त "गो" शब्द

१-गौः । गावौ । गावः । २-गाम् । गावौ । गाः ।
३-गवा । गोभ्याम् । गोभिः ४-गवे । गोभ्याम् । गोभ्यः
५-गोः । गोभ्याम् । गोभ्यः । ६ गोः । गवोः । गवाम् ।
७-गवि । गवोः । गोषु । सं०हे गौः ! हे गावौः ! हे गावः !

१०१-अन्य ओकारान्त शब्दों के रूप भी गो शब्द के समान ही होते हैं ॥

ऐकारान्त "रै" शब्द

१-राः रायौ रायः २-रायम् रायौ रायः
३-राया राभ्याम् राभिः ४-राये राभ्याम् राभ्यः
५-रायः राभ्याम् राभ्यः ६-रायः रायोः रायाम्
७-रायि रायोः रासु हे राः ! हे रायौ ! हेरायः !

१०२-सब ऐकारान्त शब्दों के रूप "रै" के समान होते हैं ॥

औकारान्त "ग्लौ" शब्द

१-ग्लौः ग्लावौ ग्लावः २-ग्लावम् ग्लावौ ग्लावः
३-ग्लावा ग्लौभ्याम् ग्लौभिः ४-ग्लावेः ग्लौभ्याम् ग्लौभ्यः
५-ग्लावः ग्लौभ्याम् ग्लौभ्यः ६-ग्लावः ग्लावोः ग्लावाम्
७-ग्लावि ग्लावोः ग्लौषु १-हेग्लौः!हेग्लावौ!हेग्लावः!

२-अजन्तस्त्रीलिङ्गम्

आकारान्त "विद्या" शब्द

१-विद्या विद्ये विद्याः कर्त्ता
२-विद्याम् विद्ये विद्याः कर्म

३–विद्यया	विद्याभ्याम्	विद्याभिः	करणम्
४–विद्यायै	”	विद्याभ्यः	सम्प्रदानम्
५–विद्यायाः	”	”	अपादानम्
६– ”	विद्ययोः	विद्यानाम्	सम्बन्धः
७–विद्यायाम्	”	विद्यासु	अधिकरणम्
१–हे विद्ये !	हे विद्ये !	हे विद्याः !	सम्बोधनम्

१०३–विद्या के ही समान प्रायः अन्य आकारान्त स्त्रीलिङ्ग शब्दों के रूप होते हैं, केवल अम्बा शब्द के सम्बोधन में हेअम्ब ! होता है। जरा शब्द में कुछ विशेष है ॥

१– जरा	जरसौ, जरे	जरसः, जराः
२–जरसम्, जराम्	” ”	” ”
३–जरसा, जरया	जराभ्याम्	जराभिः
४–जरसे, जरायै	”	जराभ्यः
५–जरसः, जरायाः	”	”
६– ” ”	जरसोः,जरयोः	जरसाम्,जराणाम्
७–जरसि,जरायाम्	” ”	जरासु
१– हे जरे !	हे जरसौ ! हेजरे !	हे जरसः ! हेजराः !

१०४–आकारान्त सर्वनाम ‘ सर्वा ’ शब्द के चतुर्थी के एकवचन में “सर्वस्यै” पञ्चमी और षष्ठी के एकवचन में “ सर्वस्याः ” षष्ठी के बहुवचन में “ सर्वासाम् ” और सप्तमी के एकवचन में “ सर्वस्याम् ” रूप होंगे शेष सब रूप “विद्या” शब्द के तुल्य। सर्वा के ही समान विश्वा, उभा, अन्या, अन्यतरा आदि आकारान्त सर्वनामों के रूप होते हैं। द्वितीया और तृतीया शब्दों के चतुर्थी, पञ्चमी, षष्ठी और सप्तमी के एकवचन में

दो २ रूप होते हैं, एक विद्यावत् और दूसरे सर्वावत्। शेष विद्यावत् ॥

आकारान्त "निशा" शब्द

१- निशा	निशे	निशाः
२-निशाम्	"	निशः,निशाः
३-निशा,निशया	निड्भ्याम् निशाभ्याम्	निड्भिः,निशाभिः
४-निशे,निशायै	" "	निड्भ्यः निशाभ्यः
५-निशः,निशायाः	" "	" "
६- " "	निशोः,निशयोः	निशाम्,निशानाम्
७-निशि,निशायाम्	" "	निट्सु,निट्त्सु,निशासु
१-हे निशे !	हे निशे !	हे निशाः !

१०५-गोपा, विश्वपा और निधिपा आदि आकारान्त स्त्री लिङ्ग शब्द पुल्लिङ्ग "विश्वपा" के ही सदृश हैं ॥

इकारान्त "श्रुति" शब्द

१-श्रुतिः	श्रुती	श्रुतयः
२-श्रुतिम्	"	श्रुतीः
३-श्रुत्या	श्रुतिभ्याम्	श्रुतिभिः
४-श्रुत्यै, श्रुतये	"	श्रुतिभ्यः
५-श्रुत्याः, श्रुतेः	श्रुतिभ्याम्	श्रुतिभ्यः
६- " "	श्रुत्योः	श्रुतीनाम्
७-श्रुत्याम्, श्रुतौ	"	श्रुतिषु
१-हे श्रुते !	हे श्रुती !	हे श्रुतयः

१०६-श्रुति के ही समान प्रायः अन्य सब ह्रस्व इकारान्त स्त्रीलिङ्गशब्दों के रूप होते हैं। त्रिशब्द बहुवचनान्त है

उस के रूप इस प्रकार होंगे। तिस्रः २। तिसृभिः। तिसृभ्यः २। तिसृणाम्। तिसृषु। "चतुर्" शब्द यद्यपि रेफान्त है परन्तु रूप उस के त्रिशब्द के समान होते हैं यथा-चतस्रः २। चतसृभिः। चतसृभ्यः २। चतसृणाम्। चतसृषु। "द्वि" शब्द द्विवचनान्त है उस के रूप स्त्रीलिङ्ग में इस प्रकार होंगे। द्वे २। द्वाभ्याम् ३। द्वयोः २॥

ईकारान्त "नदी" शब्द

१–	नदी	नद्यौ	नद्यः	५–नद्याः	नदीभ्याम्	नदीभ्यः
२–	नदीम्	"	नदीः	६– "	नद्योः	नदीनाम्
३–	नद्या	नदीभ्याम्	नदीभिः	७–नद्याम्	"	नदीषु
४–	नद्यै	"	नदीभ्यः	१–हे नदि!	हे नद्यौ!	हे नद्यः!

१०७–नदी के ही समान प्रायः अन्य ईकारान्त स्त्रीलिङ्गशब्दों के रूप होते हैं। लक्ष्मी, तरी, तन्त्री आदि में इतना भेद है कि इन के प्रथमा के एकवचन में विसर्ग का लोप नहीं होता–लक्ष्मीः। तरीः। तन्त्रीः। शेष सब रूप नदी के समान। "स्त्री" शब्द की द्वितीया विभक्ति के एकवचन और बहुवचन में दो २ रूप होते हैं–स्त्रियम्, स्त्रीम्। स्त्रियः, स्त्रीः। शेष सब नदीवत्। "श्री" शब्द के द्वितीया के एकवचन में "श्रियम्" बहुवचन में "श्रियः" चतुर्थी के एकवचन में "श्रियै" "श्रिये" पञ्चमी और षष्ठी के एकवचन में "श्रियाः" "श्रियः" षष्ठी के बहुवचन में "श्रीणाम्" "श्रियाम्" और सप्तमी के एक-

वचन में "श्रियि" "श्रियाम्" ये दो २ रूप होते हैं। शेष सब लक्ष्मीवत् ॥

उकारान्त " धेनु " शब्द

१-धेनुः	धेनू	धेनवः	५-धेन्वाः,धेनोः	धेनुभ्याम्	धेनुभ्यः
२-धेनुम्	"	धेनूः	६- "	"	धेन्वोः	धेनूनाम्
३-धेन्वा	धेनुभ्याम्	धेनुभिः	७-धेन्वाम्,धेनौ	"	धेनुषु
४-धेन्वै,धेनवे	"	धेनुभ्यः	१-हे धेनो !	हे धेनू !	हे धेनवः !

इसीके समान उकारान्त स्त्रीलिङ्गशब्दों के रूप होते हैं

दीर्घ ऊकारान्त "चमू" शब्द

१-चमूः	चम्वौ	चम्वः	५-चम्वाः	चमूभ्याम्	चमूभ्यः
२-चमूम्	"	चमूः	६- "	चम्वोः	चमूनाम्
३-चम्वा	चमूभ्याम्	चमूभिः	७-चम्वाम्	"	चमूषु
४-चम्वै	"	चमूभ्यः	१ हे चमू !	हे चम्वौ !	हे चम्वः !

१०८-" चमू " के ही समान वधू शरयू आदि ऊकारान्त शब्दों के रूप भी होते हैं ॥

१०९-" स्वयम्भू " " पुनर्भू " आदि शब्द स्त्रीलिङ्ग में भी पुल्लिङ्ग के ही समान होते हैं ॥

११०-ऋकारान्त स्त्रीलिङ्ग "स्वसृ" शब्द पुल्लिङ्ग 'धातृ' शब्द के समान है। केवल द्वितीया के बहुवचन में "स्वसॄः" होता है। " मातृ " शब्द " पितृ " के तुल्य है केवल द्वितीया के बहुवचन में " मातॄः " होता है। मातृ के ही सदृश यातृ और ननान्दृ आदि शब्द भी हैं

१११-ओकारान्त " द्यो " शब्द " गो " के तुल्य है ॥ " रै " शब्द यहां भी पुंल्लिङ्ग के समान है और 'नौ' शब्द 'ग्लौ' के तुल्य है ॥

३-अजन्तनपुंसकलिङ्गम्

अकारान्त "फल" शब्द

१-फलम् । फले । फलानि । २-फलम् । फले । फलानि ।

११२-शेष सब कारकों के सब वचनों में पुंल्लिङ्ग देव शब्द के समान रूप होते हैं । इसी के सदृश सब अकारान्त नपुंसक लिङ्गों के रूप होते हैं । केवल कतर, कतम, अन्य, अन्यतर और इतर इन पांच सर्वनामों के प्रथमा और द्वितीया के एकवचन में कतरत्, कतमत्, अन्यत्, अन्यतरत् और इतरत् ये रूप होते हैं । शेष सब सर्व के समान ॥

अकारान्त नपुंसकलिङ्ग " हृदय " शब्द-

१-हृदयम्	हृदये	हृदयानि
२- ”	”	हृन्दि ”
३-हृदा,हृदयेन	हृद्भ्याम्, हृदयाभ्याम्	हृद्भिः,हृदयैः
४-हृदे,हृदयाय	„ „	हृद्भ्यः,हृदयेभ्यः
५-हृदः,हृदयात्-द्	” ”	” ”
६- „ हृदयस्य	हृदोः,हृदययोः	हृदाम्,हृदयानाम्
७-हृदि,हृदये	” ”	हृत्सु,हृदयेषु
१-हे हृदय !	हे हृदये !	हे हृदयानि !

अकारान्त नपुंसकलिङ्ग "उदक" शब्द-

१-उदकम्	उदके	उदकानि
२- ,,	”	„ उदानि
३-उद्ना,उदकेन	उदभ्याम्, उदकाभ्याम्	उदभिः,उदकैः

४-उद्ने,उदकाय उदभ्याम् उदकाभ्याम् उदभ्यः,उदकेभ्यः
५-उद्नः,उदकात्-द् " " " "
६- " उदकस्य उद्नोः,उदकयोः उद्नाम्,उदकानाम्
७-उद्नि,उदनि,उदके " " उदसु,उदकेषु
१-हे उदक ! हे उदके ! हे उदकानि

११३-नपुंसकलिङ्ग में आकारान्त शब्द भी ह्रस्व होकर अकारान्त के ही समान हो जाते है। यथा-मधुपा शब्द-मधुपम्। मधुपे। मधुपानि॥

इकारान्त "वारि" शब्द

१ वारि वारिणी वारीणि ५ वारिणः वारिभ्यां वारिभ्यः
२- " " " ६ " वारिणोः वारीणाम्
३ वारिणा वारिभ्यां वारिभिः ७ वारिणि " वारिषु
४ वारिणे " वारिभ्यः १ हे वारि! हे वारे!

११४-प्रायः इकारान्त नपुंसकलिङ्ग वारि शब्द के समान होते हैं। परन्तु अस्थि,दधि, सक्थि और अक्षि शब्दों में कुछ भेद है-तृ० १ अस्थ्ना। च० १ अस्थ्ने। पं० १ अस्थ्नः। ष० १ अस्थ्नः। ष० २ अस्थ्नोः। ष० ब० अस्थ्नाम्। स० १ अस्थ्नि,अस्थनि। स० २ अस्थ्नोः।शेष सब रूप वारि शब्द के तुल्य हैं। दधि, सक्थि और अक्षि शब्दों में भी अस्थि के ही समान परिवर्तन होता है। सुधी और प्रधी शब्द नपुंसकलिङ्ग में ह्रस्वान्त होकर तृतीया विभक्ति से आगे एक पक्ष में तो वारि शब्द के समान होते हैं और दूसरे पक्ष में पुंल्लिङ्ग सुधी और प्रधी शब्द के समान। यथा-सुधिना। सुधिया। प्रधिना। प्रध्या। इत्यादि॥

उकारान्त "मधु" शब्द

प्रथमा—मधु । मधुनी । मधूनि । द्वितीया—मधु । मधुनी । मधूनि । तृतीया—मधुना । मधुभ्याम् । मधुभिः । चतुर्थी—मधुने । मधुभ्याम् । मधुभ्यः । पञ्चमी—मधुनः मधुभ्याम् । मधुभ्यः । षष्ठी—मधुनः । मधुनोः । मधूनाम् । सप्तमी—मधुनि । मधुनोः । मधुषु । संबोधन-हे मधु ! हे मधो ! इत्यादि ॥

११५—इसी के समान समस्त उकारान्त नपुंसकलिङ्ग शब्दों के रूप होते हैं। दीर्घऊकारान्त शब्द भी ह्रस्व होकर ह्रस्वउकारान्त शब्दों के समान होजाते हैं। यथा—"सुलू" शब्द=सुलु । सुलुनी । सुलूनि । इत्यादि ॥

ऋकारान्त "धातृ" शब्द—

१—धातृ । धातृणी । धातॄणि । २—धातृ । धातृणी । धातॄणि ।

११६—शेष विभक्तियों में एक पक्ष में वारि शब्द के समान और दूसरे पक्ष में पुंल्लिङ्ग धातृशब्द के समान रूप होंगे। यथा—धातृणा, धात्रा । इत्यादि । इसी के समान अन्य ऋकारान्तशब्दों के भी रूप होंगे ॥

एकारान्त और ऐकारान्त नपुंसक शब्द ह्रस्व होकर इकारान्त के समान और ओकारान्त और औकारान्त शब्द ह्रस्व होकर उकारान्त के समान होजाते हैं ॥

४—हलन्तपुंल्लिङ्गम्

हकारान्त "मधुलिह्" शब्द—

१—मधुलिट्, मधुलिड् मधुलिहौ मधुलिहः

२-	मधुलिहम्	मधुलिहौ	मधुलिहः
३-	मधुलिहा	मधुलिड्भ्याम्	मधुलिड्भिः
४-	मधुलिहे	"	मधुलिड्भ्यः
५-	मधुलिहः	"	"
६-	"	मधुलिहोः	मधुलिहाम्
७-	मधुलिहि	"	मधुलिट्सु

१-हे मधुलिट् ! हे मधुलिड् ! इत्यादि ॥

११७-इसी के समान तुरासाह् शब्द के रूप भी होते हैं। परन्तु पदान्त में दन्त्य 'स' को मूर्द्धन्य 'ष' होजाता है यथा—तुराषाड् । तुराषाड्भ्याम् । "गोदुह्" शब्द में इतना भेद है कि "मधुलिह्" में जहां २ ट् हुवा है वहां २ "गोदुह्" में क् और जहां २ ड् हुवा है वहां २ ग् आदेश होगा। यथा-गोधुक्, गोधुग् । गोधुग्भ्याम् । इत्यादि । "मित्रद्रुह्" शब्द के "मधुलिह्" और "गोदुह्" दोनों के समान रूप होते हैं। यथा-मित्रध्रुट् । मित्रध्रुड् । मित्रध्रुक् । मित्रध्रुग् । मित्रध्रुड्भ्याम् । मित्रध्रुग्भ्याम् । इत्यादि । तत्वमुह्, स्नुह् और स्निह् शब्दों के रूप भी "मित्रद्रुह्" के तुल्य ही होते हैं। "अनडुह्" और "विश्ववाह्" शब्दों में कुछ भेद है। यथा—

१-अनड्वान्	अनड्वाहौ	अनड्वाहः
२-अनड्वाहम्	"	अनडुहः
३-अनडुहा	अनडुद्भ्याम्	अनडुद्भिः
४-अनडुहे	"	अनडुद्भ्यः
५-अनडुहः	"	"

६–अनडुहः	अनडुहोः	अनडुहाम्
७–अनडुहि	”	अनडुत्सु

१–हे अनड्वन् ! हे अनड्वाहौ ! हे अनड्वाहः !

१–विश्ववाट्,ड्	विश्ववाहौ	विश्ववाहः
२–विश्ववाहम्	”	विश्वौहः
३–विश्वौहा	विश्ववाड्भ्याम्	विश्ववाड्भिः
४–विश्वौहे	”	विश्ववाड्भ्यः
५–विश्वौहः	”	”
६– ”	विश्वौहोः	विश्वौहाम्
७–विश्वौहि	”	विश्ववाट्सु

१–हे विश्ववाट् ! इत्यादि ॥

११८–विश्ववाह् के ही समान भारवाह् आदि शब्दों के रूप भी होते हैं।

११९–रेफान्त "चतुर्" शब्द केवल बहुवचनान्त है। यथा–
१ चत्वारः २ चतुरः ३ चतुर्भिः ४ चतुर्भ्यः ५ चतुर्भ्यः ६ चतुर्णाम् ७ चतुर्षु ॥

वकारान्त " सुदिव् " शब्द

१–सुद्यौः	सुदिवौ	सुदिवः	५–सुदिवः	सुद्युभ्याम्	सुद्युभ्यः
२–सुदिवम्	”	”	६– ”	सुदिवोः	सुदिवाम्
३–सुदिवा	सुद्युभ्याम्	सुद्युभिः	७–सुदिवि	”	सुद्युषु
४–सुदिवे	”	सुद्युभ्यः	१–हे सुद्यौः ! इत्यादि ॥		

मकारान्त सर्वनाम " इदम् " शब्द

१–अयम्	इमौ	इमे	३–अनेन	आभ्याम्	एभिः
२–इमम्	”	इमान्	४–अस्मै	”	एभ्यः

५-अस्मात् आभ्याम् एभ्यः ७-अस्मिन् अनयोः एषु
६-अस्य अनयोः एषाम्

१२०-अन्वादेश में द्वितीया के तीनों वचन, और तृतीया के एकवचन और षष्ठी और सप्तमी के द्विवचन में "इदम्" शब्द को 'एन' आदेश होकर-एनम्। एनौ। एनान्। एनेन। एनयोः २। ये ६ रूप होते हैं॥

१२१-"किम्" सर्वनाम को "क" आदेश होकर अकारान्त "सर्व" शब्द के समान रूप होजाते हैं यथा-कः। कौ। के। इत्यादि॥

नकारान्त "राजन्" शब्द

१-राजा राजानौ राजानः ५-राज्ञः राजभ्याम् राजभ्यः
२-राजानम् " राज्ञः ६- " राज्ञोः राज्ञाम्
३-राज्ञा राजभ्याम् राजभिः ७-राज्ञि, राजनि, " राजसु
४-राज्ञे " राजभ्यः सं०-हे राजन्! इत्यादि॥

१२२-"यज्वन्" शब्द में इतना भेद है कि उस के द्वितीया के बहुवचन से लेकर सप्तमी के बहुवचन तक हलादि विभक्तियों को छोड़कर उपधा के अकार का लोप नहीं होता। यथा-यज्वनः। यज्वना। यज्वने। यज्वनः २। यज्वनोः २। यज्वनाम्। यज्वनि। पूषन्, अर्यमन् और वृत्रहन् शब्द राजन् शब्द के समान हैं परन्तु ब्रह्मन् और आत्मन् शब्द "यज्वन्" शब्द के सदृश हैं। अर्वन् शब्द में कुछ विशेष है॥

१-अर्वा अर्वन्तौ अर्वन्तः ५-अर्वतः अर्वद्भ्याम् अर्वद्भ्यः
२-अर्वन्तम् " अर्वतः ६- " अर्वतोः अर्वताम्
३-अर्वता अर्वद्भ्याम् अर्वद्भिः ७-अर्वति " अर्वत्सु
४-अर्वते " अर्वद्भ्यः सं०-हे अर्वन्! इत्यादि॥

१२३–"मघवन्" शब्द एक पक्ष में तो "राजन्" शब्द के तुल्य है –१ मघवा । मघवानौ २ मघवानः । मघवानम् । मघवानौ । मघोनः । इत्यादि । द्वितीय पक्ष में "अर्वन्" शब्द के सदृश है केवल प्रथमा के एकवचन में "मघवान्" ऐसा रूप होता है ॥

"युवन्" शब्द

१–युवा	युवानौ	युवानः	५–यूनः	युवभ्याम्	युवभ्यः
२–युवानम्	„	यूनः	६– „	यूनोः	यूनाम्
३–यूना	युवभ्याम्	युवभिः	७–यूनि	„	युवसु
४–यूने	„	युवभ्यः	सं०–हे युवन् ! इत्यादि ॥		

"श्वन्" शब्द

१–श्वा	श्वानौ	श्वानः	५–शुनः	श्वभ्याम्	श्वभ्यः
२–श्वानम्	„	शुनः	६– „	शुनोः	शुनाम्
३–शुना	श्वभ्याम्	श्वभिः	७–शुनि	„	श्वसु
४–शुने	„	श्वभ्यः	सं०–हे श्वन् ! हे श्वानौ ! हे श्वानः !		

"वाग्मिन्" शब्द

१–वाग्मी	वाग्मिनौ	वाग्मिनः
२–वाग्मिनम्	„	„
३–वाग्मिना	वाग्मिभ्याम्	वाग्मिभिः
४–वाग्मिने	वाग्मिभ्याम्	वाग्मिभ्यः
५–वाग्मिनः	„	„
६– „	वाग्मिनोः	वाग्मिनाम्
७–वाग्मिनि	वाग्मिनोः	वाग्मिषु
सं०–हे वाग्मिन् !	हे वाग्मिनौ !	हे वाग्मिनः

इसी के सदृश दण्डिन्, शार्ङ्गिन्, यशस्विन् आदि सब इन्नन्तशब्दों के रूप होंगे ॥

"पथिन्" शब्द

१-पन्थाः	पन्थानौ	पन्थानः	५-पथः	पथिभ्याम्	पथिभ्यः
२-पन्थानम्	"	पथः	६- "	पथोः	पथाम्
३-पथा	पथिभ्याम्	पथिभिः	७-पथि	"	पथिषु
४-पथे	"	पथिभ्यः	सं०-हे पन्थाः ! इत्यादि		

१२४-"पथिन्" के तुल्य ही "मथिन्" शब्द के भी रूप होते हैं। संख्यावाचक "पञ्चन्" शब्द केवल बहुवचनान्त है। यथा-पञ्च २। पञ्चभिः। पञ्चभ्यः २। पञ्चानाम्। पञ्चसु। इसी के समान सप्तन्, नवन् और दशन् शब्दों के भी रूप होते हैं। "अष्टन्" शब्द में कुछ भेद है। यथा-अष्टौ २। अष्टाभिः। अष्टाभ्यः २। अष्टानाम्। अष्टासु। एक पक्ष में "पञ्चन्" के समान भी रूप होते हैं ॥

जकारान्त "अश्वयुज्" शब्द

१-अश्वयुक्,ग्	अश्वयुजौ	अश्वयुजः
२-अश्वयुजम्	"	"
३-अश्वयुजा	अश्वयुग्भ्याम्	अश्वयुग्भिः
४-अश्वयुजे	"	अश्वयुग्भ्यः
५-अश्वयुजः	"	"
६- "	अश्वयुजोः	अश्वयुजाम्
७-अश्वयुजि	"	अश्वयुक्षु
सं०-हे अश्वयुक् !	हे अश्वयुजौ !	हे अश्वयुजः

१२५-इसी के समान "ऋत्विज्" आदि जकारान्त शब्दों के रूप भी होते हैं परन्तु "सम्राज्" शब्द में कुछ भेद है। यथा—

१–सम्राट्,ड्	सम्राजौ	सम्राजः
२–सम्राजम्	"	"
३–सम्राजा	सम्राड्भ्याम्	सम्राड्भिः
४–सम्राजे	"	सम्राड्भ्यः
५–सम्राजः	"	"
६– "	सम्राजोः	सम्राजाम्
७–सम्राजि	"	सम्राट्सु

सं०–हे सम्राट् ! हे सम्राड् ! इत्यादि ॥

१२६–" सम्राज् " के ही समान विभ्राज्, परिव्राज् और विश्वसृज् आदि शब्दों के रूप भी होते हैं। परन्तु " विश्वराज् " शब्द में इतना भेद है कि हलादि विभक्तियों में " विश्व " शब्द के अकार को दीर्घ होजाता है यथा – विश्वाराट् । विश्वाराड् । विश्वाराड्भ्याम् । इत्यादि शेष विभक्तियों में " सम्राज् " के तुल्य है ॥

दकारान्त सर्वनाम " युष्मद् " शब्द

१–त्वम्	युवाम्	यूयम्	४–ते	वाम्	वः
२–त्वाम्	"	युष्मान्	५–त्वत्	युवाभ्याम्	युष्मत्
२–त्वा	वाम्	वः	६–तव	युवयोः	युष्माकम्
३–त्वया	युवाभ्याम्	युष्माभिः	६–ते	वाम्	वः
४–तुभ्यम्	"	युष्मभ्यम्	७–त्वयि	युवयोः	युष्मासु

" अस्मद् " शब्द

१–अहम्	आवाम्	वयम्	२–मा	नौ	नः
२–माम्	"	अस्मान्	३–मया	आवाभ्याम्	अस्माभिः

४-मह्यम्	आवाभ्याम्	अस्मभ्यम्	६-मम	आवयोः	अस्माकम्
४-मे	नौ	नः	६-मे	नौ	नः
५-मत्	आवाभ्याम्	अस्मत्	७-मयि	आवयोः	अस्मासु

१२७-ये दोनों शब्द तीनों लिङ्गों में एक से ही रहते हैं। "यद्" शब्द "किम्" के तुल्य अकारान्त होकर सर्व के समान होजाता है। यथा-१-यः यौ ये २ यम् यौ यान् इत्यादि। त्यद्, तद् और एतद् शब्दों के रूप भी "यद्" के ही समान होते हैं केवल प्रथमा के एकवचन में अनन्त्य तकार को सकार होकर-स्यः, सः और एषः ये रूप बनते हैं। इदम् और एतद् शब्द को द्वितीया के तीनों वचन और तृतीया के एकवचन और षष्ठी तथा सप्तमी के द्विवचन में यदि अन्वादेश हो तो "एन" आदेश हो जाता है। किसी बात को एकवार कह कर पुनः कहना अन्वादेश कहाता है यथा-अनेन वा एतेन छात्रेण व्याकरणमधीतम्। अथो एनम् छन्दोऽध्यापय। इस छात्र ने व्याकरण पढ़ लिया अब इस को वेद पढ़ाओ। अनयोः वा एतयोश्छात्रयोः शोभनं शीलम्। अथो एनयोः पवित्रं कुलञ्च। इन दोनों छात्रों का स्वभाव उत्तम है और इन का कुल भी श्रेष्ठ है।

दकारान्त "द्विपाद्" शब्द

१-द्विपात्, द्विपाद्	द्विपादौ	द्विपादः
२-द्विपादम्	,,	द्विपदः
३-द्विपदा	द्विपाद्भ्याम्	द्विपाद्भिः
४-द्विपदे	,,	द्विपाद्भ्यः

५–द्विपदः	द्विपाद्भ्याम्	द्विपाद्भ्यः
६– ,,	द्विपदोः	द्विपदाम्
७–द्विपदि	,,	द्विपात्सु

सं०–हे द्विपात्! इत्यादि ॥

१२८–इसी प्रकार सुपाद्, चतुष्पाद्, व्याघ्रपाद् आदि शब्दों के रूप होंगे ॥

चकारान्त "प्राच्" शब्द

१–प्राङ्	प्राञ्चौ	प्राञ्चः	५–प्राचः	प्राग्भ्याम्	प्राग्भ्यः
२–प्राञ्चम्	,,	प्राचः	६– ,,	प्राचोः	प्राचाम्
३–प्राचा	प्राग्भ्याम्	प्राग्भिः	७–प्राचि	,,	प्राक्षु
४–प्राचे	,,	प्राग्भ्यः	१–हे प्राङ्!	हेप्राञ्चौ!	हेप्राञ्चः!

चकारान्त "प्रत्यच्" शब्द

१—प्रत्यङ्	प्रत्यञ्चौ	प्रत्यञ्चः
२—प्रत्यञ्चम्	,,	प्रतीचः
३—प्रतीचा	प्रत्यग्भ्याम्	प्रत्यग्भिः
४–प्रतीचे	,,	प्रत्यग्भ्यः
५—प्रतीचः	,,	,,
६— ,,	प्रतीचोः	प्रतीचाम्
७—प्रतीचि	,,	प्रत्यक्षु
१ हे प्रत्यङ्!	हे प्रत्यञ्चौ!	हे प्रत्यञ्चः!

१२९–"प्रत्यच्" शब्द के ही समान उदच्, सम्यच् और सध्र्यच् शब्दों के रूप भी होते हैं। तिर्यच् शब्द में कुछ भेद है ॥

" तिर्यच् " शब्द

१—तिर्यङ्	तिर्यञ्चौ	तिर्यञ्चः
२—तिर्यञ्चम्	"	तिरश्चः
३—तिरश्चा	तिर्यग्भ्याम्	तिर्यग्भिः
४—तिरश्चे	"	तिर्यग्भ्यः
५—तिरश्चः	"	"
६— "	तिरश्चोः	तिरश्चाम्
७—तिरश्चि	"	तिर्यक्षु
१—हे तिर्यङ् !	हे तिर्यञ्चौ !	हे तिर्यञ्चः !

तकारान्त " महत् " शब्द

महान् महान्तौ महान्तः महतः महद्भ्याम् महद्भ्यः
महान्तम् " महतः " महतोः महताम्
महता महद्भ्याम् महद्भिः महति " महत्सु
महते " महद्भ्यः हे महन् ! इत्यादि ॥

१३०—'महत्' शब्द के ही समान 'भवत्' शब्द भी है परन्तु इसके प्रथमा के द्विवचन से लेकर द्वितीया के द्विवचन तक उपधा को दीर्घ नहीं होता। यथा— भवन्तौ भवन्तः। भवन्तम्। भवन्तौ। शेष रूप " महत् " शब्द के समान हैं। गोमत् और धनवत् आदि शब्द " भवत् " शब्द के समान हैं। "ददत्" शब्द में इतना भेद है कि इस को प्रथमा और द्वितीया विभक्ति में "नुम्" का आगम नहीं होता। यथा— ददत्। ददतौ। ददतः। ददतम्। ददतौ। शेष सब " भवत् " के समान। " ददत् " शब्द के ही तुल्य जक्षत्, जाग्रत्, दरिद्रत्, शासत् और चकासत् शब्दों के रूप भी होते हैं ॥

पकारान्त " गुप् " शब्द

१–गुप्,गुब्	गुपौ	गुपः	५–गुपः	गुब्भ्याम्	गुब्भ्यः
२–गुपम्	"	"	६– "	गुपोः	गुपाम्
३–गुपा	गुब्भ्याम्	गुब्भिः	७–गुपि	"	गुप्सु
४–गुपे	"	गुब्भ्यः	१–हे गुप् ! इत्यादि		

१३१–इसी के समान " तृप् " " दृप् " आदि पकारान्त शब्दों के रूप भी होते हैं ॥

शकारान्त " तादृश् " शब्द

१–तादृक्,ग्	तादृशौ	तादृशः
२–तादृशम्	"	"
३–तादृशा	तादृग्भ्याम्	तादृग्भिः
४–तादृशे	"	तादृग्भ्यः
५–तादृशः	"	"
६– "	तादृशोः	तादृशाम्
७–तादृशि	"	तादृक्षु
१—हे तादृक् ! इत्यादि		

१३२–"तादृश्" के ही समान यादृश्, ईदृश्, कीदृश् और स्पृश् शब्दों के भी रूप होते हैं । " विश् " शब्द में इतना भेद है कि उस को हलादि विभक्तियों में ट् और ड् होते हैं । यथा–विट्, विड् । विड्भ्याम् । विड्भिः । इत्यादि । " नश् " शब्द एक पक्ष में तो " तादृश् " के ही समान है, द्वितीय पक्ष में " विश् " के समान । यथा—नक्, नग्, नट्, नड् । नग्भ्याम्, नड्भ्याम् । इत्यादि । " दधृष् " शब्द षकारान्त है पर रूप " तादृश् " के ही तुल्य

होते हैं । "रत्नमुष्" शब्द भी षकारान्त है पर रूप "विश्" के समान होते हैं ॥

षकारान्त "चिकीर्ष्" शब्द-

१-चिकीः	चिकीर्षौ	चिकीर्षः
२-चिकीर्षम्	,,	,,
३-चिकीर्षा	चिकीर्भ्याम्	चिकीर्भिः
४-चिकीर्षे	,,	चिकीर्भ्यः
५-चिकीर्षः	,,	,,
६- ,,	चिकीर्षोः	चिकीर्षाम्
७-चिकीर्षि	,,	चिकीर्षु

१-हे चिकीः ! इत्यादि

१३३-"पिपठिष्" शब्द भी "चिकीर्ष्" के समान है केवल सप्तमी के बहुवचन में "पिपठीष्षु" होता है । "षष्" शब्द केवल बहुवचनान्त है यथा-षट् २ । षड्भिः । षड्भ्यः २ । षण्णाम् । षट्सु ।

सकारान्त "उशनस्" शब्द

१-उशना	उशनसौ	उशनसः
२-उशनसम्	,,	,,
३-उशनसा	उशनोभ्याम्	उशनोभिः
४-उशनसे	,,	उशनोभ्यः
५-उशनसः	,,	,,
६- ,,	उशनसोः	उशनसाम्
७-उशनसि	,,	उशनस्सु

१-हे उशनः ! हे उशन ! हे उशनन् ! इत्यादि ॥

१३४-इसी के समान "अनेहस्" और पुरुदंशस् आदि

सकारान्त शब्दों के रूप भी होते हैं। केवल सम्बोधन में–हे अनेहः ! हे पुरुदंशः ! एक २ ही रूप होता है। "वेधस्" शब्द भी "उशनस्" के ही तुल्य है, केवल प्रथमा के एकवचन में "वेधाः" यह विसर्गान्त रूप होता है। चन्द्रमस्, वृद्धश्रवस्, जातवेदस्, विडौजस्, सुमनस्, सुप्रजस् और सुमेधस् आदि शब्द भी "वेधस्" के ही समान हैं। विद्वस् और पुंस् शब्दों में कुछ भेद है सो दिखलाते हैं॥

१–विद्वान्	विद्वांसौ	विद्वांसः	५–विदुषः	विद्वद्भ्याम्	विद्वद्भ्यः
२–विद्वांसम्	"	विदुषः	६– "	विदुषोः	विदुषाम्
३–विदुषा	विद्वद्भ्याम्	विद्वद्भिः	७–विदुषि	"	विद्वत्सु
४–विदुषे	"	विद्वद्भ्यः	१—हे विद्वन् ! इत्यादि॥		

१–पुमान्	पुमांसौ	पुमांसः	५–पुंसः	पुंभ्याम्	पुंभ्यः
२–पुमांसम्	"	पुंसः	६– "	पुंसोः	पुंसाम्
३–पुंसा	पुंभ्याम्	पुंभिः	७–पुंसि	"	पुंसु
४–पुंसे	"	पुंभ्यः	१—हे पुमन् ! इत्यादि॥		

१३५–विद्वस् के ही समान शुश्रुवस् और "जग्मिवस्" आदि शब्दों के रूप होते हैं॥

सकारान्त सर्वनाम "अदस्" शब्द

१–असौ	अमू	अमी	५–अमुष्मात्	अमूभ्याम्	अमीभ्यः
२–अमुम्	"	अमून्	६–अमुष्य	अमुयोः	अमीषाम्
३–अमुना	अमूभ्याम्	अमीभिः	७–अमुष्मिन्	"	अमीषु
४–अमुष्मै	"	अमीभ्यः			

५-हलन्तस्त्रीलिङ्गम्

हकारान्त " उपानह् " शब्द

१-उपानत्,द्	उपानहौ	उपानहः
२-उपानहम्	"	"
३-उपानहा	उपानद्भ्याम्	उपानद्भिः
४-उपानहे	"	उपानद्भ्यः
५-उपानहः	"	"
६- "	उपानहोः	उपानहाम्
७-उपानहि	"	उपानत्सु

१-हे उपानत्! इत्यादि

१३६-"उष्णिह्" शब्द भी " उपानह् " के समान है केवल हलादि विभक्तियों में कुछ भेद है। यथा- उष्णिक्, उष्णिग्। उष्णिग्भ्याम्। उष्णिग्भिः। उष्णिक्षु। इत्यादि

वकारान्त 'दिव्, " शब्द "

१-द्यौः	दिवौ	दिवः	५-दिवः	द्युभ्याम्	द्युभ्यः
२-दिवम्	"	"	६- "	दिवोः	दिवाम्
३-दिवा	द्युभ्याम्	द्युभिः	७-दिवि	"	द्युषु
४-दिवे	"	द्युभ्यः	सं०-हेद्यौः!	हेदिवौ!	हेदिवः!

रेफान्त " गिर् " शब्द

१-गीः	गिरौ	गिरः	५ गिरः	गीर्भ्याम्	गीर्भ्यः
२-गिरम्	"	"	६ "	गिरोः	गिराम्
३-गिरा	गीर्भ्याम्	गीर्भिः	७ गिरि	"	गीर्षु
४-गिरे	"	गीर्भ्यः	१ हे गीः!	हेगिरौ!	हे गिरः!

इसी के समान पुर् और धुर् शब्दों के भी रूप होते हैं। यथा-पूः पुरौ पुरः। धूः धुरौ धुरः। इत्यादि ॥

मकारान्त सर्वनाम "इदम्" शब्द

१-इयम्	इमे	इमाः	५-अस्याः	आभ्याम्	आभ्यः
२-इमाम्	"	"	६- "	अनयोः	आसाम्
३-अनया	आभ्याम्	आभिः	७-अस्याम्	"	आसु
४-अस्यै	"	आभ्यः			

१३७-"किम्" शब्द को स्त्रीलिङ्ग में "का" होकर "सर्वा" के तुल्य इसके रूप होते हैं। यथा-का। के। काः।इत्यादि तद् यद् और एतद् ये तीनों सर्वनाम भी आकारान्त होकर सर्वा के तुल्य होजाते हैं। यथा-तद्-सा। ते। ताः। यद्-या। ये। याः। एतद्—एषा। एते। एताः। इत्यादि॥

१३८-जकारान्त "स्रज्" शब्द के रूप पुँल्लिङ्ग "ऋत्विज्" शब्द के समान होते हैं। यथा-स्रक्, स्रग्। स्रजौ। स्रजः। स्रग्भ्याम्। स्रक्षु। इत्यादि॥

१३९-चकारान्त "वाच्" शब्द के रूप भी "स्रज्" शब्द के समान ही होते हैं। यथा-वाक्, वाग्। वाचौ। वाचः। वाचा। वाग्भ्याम्। इत्यादि। इसी के तुल्य ऋच् और त्वच् शब्द भी हैं॥

१४०-शकारान्त दृश् और दिश् शब्दों के रूप पुंल्लिङ्ग "तादृश्" शब्द के सदृश होते हैं। यथा-दृक्, दृग्। दिक्, दिग्। दृशौ।दिशौ। दृग्भ्याम्। दिग्भ्याम्। इत्यादि॥

१४१-षकारान्त "त्विष्" शब्द के रूप पुंल्लिङ्ग "रत्नमुष्" शब्द के समान होते हैं। यथा-त्विट्, त्विड्। त्विषौ। त्विषः। त्विषा। त्विड्भ्याम्। इत्यादि॥

१४२-सजुष् और आशिष् शब्द पुंल्लिङ्ग "पिपठिष्" शब्द के समान हैं। यथा-सजूः। सजुषौ। सजुषः। सजुषा। सजूर्भ्याम्। इत्यादि। आशीः। आशिषौ। आशिषा। आशीर्भ्याम्। इत्यादि॥

१४३-पकारान्त "अप्" शब्द केवल बहुवचनान्त है। यथा-१ आपः २ अपः ३ अद्भिः ४ अद्भ्यः ५ अद्भ्यः ६ अपाम् ७ अप्सु॥

सकारान्त सर्वनाम "अदस्" शब्द

१-असौ	अमू	अमूः	५-अमुष्माः	अमूभ्याम्	अमूभ्यः
२-अमूम्	"	"	६-	"	अमुयोः	अमूषाम्
३-अमुया	अमूभ्याम्	अमूभिः	७-अमुष्याम्	"		अमूषु
४-अमुष्यै	"	अमूभ्यः				

६-हलन्तनपुंसकलिङ्गम्

हकारान्त "स्वनडुह्" शब्द

प्रथमा—स्वनडुत्,स्वनडुद्	स्वनडुही	स्वनड्वांहि
द्वितीया- "	"	"	"

शेष सब रूप पुंल्लिङ्ग "अनडुह्" शब्द के समान हैं॥

रेफान्त "वार्" शब्द

१-वाः	वारी	वारि	२-वाः	वारी	वारि

१४४-शेष सब रूप स्त्रीलिङ्ग "गिर्" शब्द के समान हैं यथा-वारा। वार्भ्याम्। इत्यादि। "चतुर्" शब्द

बहुवचनान्त है। यथा-१ चत्वारि २ चत्वारि। शेष पुंलिङ्ग के सदृश है। मकारान्त सर्वनाम किम् और इदम् शब्द-किम्। के। कानि॥ इदम्। इमे। इमानि॥ शेष पुंल्लिङ्गवत्। अन्वादेश में द्वितीया के तीनों वचनों में एनम्। एने। एनानि। ये रूप होंगे॥

नकारान्त "नामन्" शब्द

१	नाम	नाम्नी, नामनी	नामानि	५	नाम्नः	नामभ्याम्	नामभ्यः
२	"	"	"	६	"	नाम्नोः	नाम्नाम्
३	नाम्ना	नामभ्याम्	नामभिः	७	नाम्नि	"	नामसु
४	नाम्ने	"	नामभ्यः	सं०	हे नाम, हे नामन्!		इत्यादि

इसी के समान सामन्, दामन् और व्योमन् आदि शब्दों के रूप होते हैं॥

नकारान्त "अहन्" शब्द

१	अहः	अह्नी, अहनी	अहानि	५	अह्नः	अहोभ्याम्	अहोभ्यः
२	"	"	"	६	"	अह्नोः	अह्नाम्
३	अह्ना	अहोभ्याम्	अहोभिः	७	अह्नि, अहनि	"	अहःसु
४	अह्ने	"	अहोभ्यः	१	हे अहः!		इत्यादि॥

१४५-ब्रह्मन् शब्द-ब्रह्म। ब्रह्मणी। ब्रह्माणि। पुनरपि- ब्रह्म। ब्रह्मणी। ब्रह्माणि। आगे पुंल्लिङ्ग "ब्रह्मन्" शब्द के तुल्य है॥

"वाग्मिन्" शब्द

वाग्मि वाग्मिनी वाग्मीनि वाग्मि वाग्मिनी वाग्मीनि

१४६-आगे पुंल्लिङ्ग के तुल्य है इसी के समान स्रग्विन्

और दण्डिन् आदि शब्दों के रूप भी होते हैं। " सुपथिन् " शब्द में कुछ विशेष है यथा-सुपथि। सुपथी। सुपन्थानि पुनः-सुपथि। सुपथी। सुपन्थानि शेष पुंल्लिङ्ग " पथिन् " शब्द के समान॥

१४७-दकारान्त सर्वनाम "तद्" शब्द-तद्। ते। तानि। पुनरपि-तद्। ते। तानि। शेष पुंल्लिङ्गवत्। इसी प्रकार त्यद्, यद् और एतद् को भी जानो। अन्वादेश में-एनत्। एने। एनानि॥

१४८-तकारान्त "शकृत्" शब्द-शकृत्। शकृती। शकृन्ति पुनरपि - शकृत्। शकृती। शकृन्ति। आगे पुंल्लिङ्ग "महत्" शब्द के तुल्य है॥

१४९-"ददत्" शब्द के प्रथमा और द्वितीया के बहुवचन में दो २ रूप होते हैं। यथा-ददति। ददन्ति। शेष सब "शकृत्" के समान हैं। " ददत् " के ही तुल्य शासत्, चकासत्, जाग्रत्, जक्षत् और दरिद्रत् के रूप भी जानो॥

१५०-"तुदत्" शब्द के प्रथमा और द्वितीया के द्विवचन में दो २ रूप होते हैं। यथा-तुदती। तुदन्ती। शेष सब "शकृत्" के तुल्य। "पचत्" शब्द का उक्त विभक्तियों में एक २ रूप ही होता है। यथा-पचन्ती। शेष सब "शकृत्" के समान। " पचत् " के समान ही 'दीव्यत्" को भी जानो "यकृत्" में कुछ विशेष है॥

१–यकृत्	यकृती	यकृन्ति
२– ,,	,,	यकानि, ,,
३–यक्ना, यकृता	यकभ्याम्, यकृद्भ्याम्	यकभिः, यकृद्भिः
४–यक्ने, यकृते	,, ,,	यकभ्यः यकृद्भ्यः
५–यक्नः, यकृतः	,, ,,	,, ,,
६– ,, ,,	यक्नोः, यकृतोः	यक्नाम्, यकृताम्
७–यकनि, यक्नि, यकृति	,, ,,	यकसु, यकृत्सु

षकारान्त "धनुष्" शब्द			सकारान्त "पयस्" शब्द		
१–धनुः	धनुषी	धनूंषि	१–पयः	पयसी	पयांसि
२– ,,	,,	,,	२– ,,	,,	,,
३–धनुषा	धनुर्भ्याम्	धनुर्भिः	३–पयसा	पयोभ्याम्	पयोभिः
४–धनुषे	,,	धनुर्भ्यः	४–पयसे	,,	पयोभ्यः
५–धनुषः	,,	,,	५–पयसः	,,	,,
६– ,,	धनुषोः	धनुषाम्	६– ,,	पयसोः	पयसाम्
७–धनुषि	,,	धनुष्षु	७–पयसि	,,	पयस्सु
१–हे धनुः! इत्यादि ॥			१–हे पयः! इत्यादि ॥		

१५१–"धनुष्" के ही समान यजुष्, वपुष्, चक्षुष् और हविष् आदि षकारान्त शब्दों के रूप होते हैं ॥

१५२–"पयस्" के ही सदृश वासस्, ओजस्, मनस्, सरस्, यशस् और तपस् आदि सकारान्त शब्दों के रूप भी होते हैं ॥

सर्वनाम "अदस्" शब्द

१–अदः अमू अमूनि २–अदः अमू अमूनि
शेष पुंल्लिङ्ग "अदस्" के समान जानो ॥

चतुर्थोऽध्यायः

अथ कारकाणि

१५३—क्रिया के हेतु को कारक कहते हैं या यों कहना चाहिये कि जिसके द्वारा क्रिया और संज्ञा का सम्बन्ध विदित होता है उसे कारक कहते हैं ॥

१५४—कारकों के सात भेद हैं जिन के नाम ये हैं—कर्त्ता, कर्म, करण, सम्प्रदान, अपादान, शेष * और अधिकरण ॥

१—कर्त्ता

१५५—कर्त्ता उसे कहते हैं जो स्वतन्त्रतासे क्रिया को सम्पादन करे और जो प्रेरणा करके दूसरे से क्रिया करावे उस की भी कर्तृ संज्ञा है। ऐसे प्रयोजक कर्त्ता को हेतु भी कहते हैं ॥

१५६—कर्तृकारक में यदि क्रिया का फल कर्ता ही में रहे तो प्रथमा विभक्ति होती है। यथा—शिष्यः पठति=शिष्य पढ़ता है। गुरुः पाठयति=गुरु पढ़ाता है ॥

१५७—यदि क्रिया का फल कर्म में जावे तो कर्म में भी प्रथमा विभक्ति होती है। यथा—क्रियते कटः। भ्रियते भारः। ह्रियते कालः ॥

१५८—यदि संज्ञा का अर्थ वा लिङ्ग वा वचन वा परिमाण मात्र ही कहना हो तो प्रथमा विभक्ति होती है। यथा—अर्थमात्र—विवेकः। स्मृतिः। ज्ञानम्। लिङ्गमात्र-

---

* वैयाकरणों ने शेष को कारक नहीं माना है किन्तु ६ कारकों से जो अवशिष्ट रहजाता है उसको शेष माना है। चाहे शेष को कारक न मानो, परन्तु इसका विषय सब कारकों से बड़ा हुआ है क्योंकि अन्य कारकों से जो कुछ शेष रहता है वह सब इसी के पेट में समाता है ॥

तटः। तटी। तटम्। वचनमात्र–एकः। द्वौ। बहवः। परिमाण–द्रोणः। खारी। आढकम्। "अपदं न प्रयुञ्जीत" इसके अनुसार संस्कृत में वस्तु का निर्देश भी विना विभक्ति के नहीं होता॥

१५९–(सम्बोधन) किसी को चिताकर अपने अभिमुख करने में भी १ विभक्ति होती है। हे शिष्य! भो गुरो!

२–कर्म

१६०–कर्म उसे कहते हैं जो कर्ता का इष्टतम हो अर्थात् क्रिया के द्वारा कर्ता जिसको सिद्ध करना चाहे वा करे। वह यदि अनुक्त हो अर्थात् क्रियाफल से रहित हो तो उसमें द्वितीया विभक्ति होती है। यथा–विद्यां पठति। धनमिच्छति। कहीं २ अनिष्ट की भी, जिसको कर्ता नहीं चाहता, कर्म संज्ञा होती है। यथा–चौरान् पश्यति=चोरों को देखता है। कण्टकानुमृद्नाति=कांटोको खूंदता है। इनके अतिरिक्त जहां पर और कोई कारक नहीं कहा गया वहां भी कर्म कारक होता है। यथा–माणवकं पन्थानं पृच्छति=बालक से मार्ग को पूछता है। शिष्यं धर्ममनुशास्ति=शिष्य को धर्म का उपदेश करता है। यहां माणवक और शिष्य शब्दों में अन्य कारक अनुक्त हैं इसलिये इन दोनों में भी कर्म कारक होगया॥

१६१–काल और मार्ग के अत्यन्त संयोग में भी द्वितीया विभक्ति होती है। यथा–मासमधीतोऽनुवाकः=एक महीने तक लगातार अनुवाक पढ़ा। क्रोशं कुटिला नदी=एक क्रोश तक नदी बराबर टेढ़ी है॥

१६२-अन्तरा और अन्तरेण शब्द के योग में भी द्वितीया विभक्ति होती है। अन्तरा त्वां च मां च पुस्तकम्=मेरे और तेरे बीच में पुस्तक है। अन्तरेण पुरुषकारं न किञ्चिल्लभ्यते=विना पुरुषार्थके कुछ नहीं मिलता ॥

१६३-उभयतः, सर्वतः, अभितः, परितः, समया, निकषा, धिक्, हा और प्रति इन शब्दों के योग में भी द्वितीया विभक्ति होती है। उभयतः ग्रामम्। धिक् जाल्मम्। हा दरिद्रम्। बुभुक्षितं न प्रतिभाति किञ्चित् ॥

१६४-कर्मप्रवचनीय शब्दों के योग में भी द्वितीया विभक्ति होती है। यथा-नदीमन्ववसिता सेना=नदी से सेना लगी हुई है। अन्वर्जुनं योद्धारः=अर्जुन से नीचे योद्धा हैं। वृक्षं प्रति विद्योतते विद्युत्=वृक्ष पर बिजली चमकती है। साधुस्त्वं मातरं प्रति=तू माता पर मेहरबान है। इत्यादि ॥

१६५-मार्गवाचक शब्दों को छोड़कर गत्यर्थक धातुओं के कर्मकारक में द्वितीया और चतुर्थी दोनों विभक्तियां होती हैं। यथा-ग्रामं गच्छति। ग्रामाय गच्छति। ग्रामं व्रजति। ग्रामाय व्रजति। ग्रामं याति। ग्रामाय याति=ग्राम को जाता है। मार्गवाचकों में तो द्वितीया ही होगी। यथा-मार्गं गच्छति। पन्थानं गच्छति। अध्वानं याति। इत्यादि ॥

३-करणम्

१६६-करण कारक उसे कहते हैं जिसके द्वारा कर्ता क्रिया को सिद्ध करे अर्थात् जो क्रियासिद्धि का साधन हो।

इस कारक में सदा तृतीया विभक्ति होती है—हस्तेन गृह्णाति=हाथ से पकड़ता है। पादेन गच्छति=पैर से चलता है। वस्त्रेणाच्छादयति=वस्त्र से ढकता है॥

१६७—कर्तृ कारक में भी यदि क्रिया का फल कर्ता में न जावे किन्तु कर्म में रहे तो तृतीया विभक्ति होती है। यथा—शिष्येण पठ्यते पुस्तकम्=शिष्य से पुस्तक पढ़ी जाती है। पान्थेन गम्यते पन्थाः=पथिक से मार्ग जाया जाता है। आचार्येणोपदिश्यते धर्मः= आचार्य्य से धर्म उपदेश किया जाता है= इत्यादि॥

१६८—जहां क्रिया की समाप्ति हुई हो वहां काल और मार्ग के अत्यन्त संयोग में तृतीया विभक्ति होती है। यथा—मासेनानुवाकोऽधीतः=एक मास में अनु-वाक पढ़ लिया। योजनेनाध्यायोऽधीतः=एक योजनमें अध्याय पढ़ लिया। जहां क्रिया की समाप्ति न हुई हो वहां द्वितीया होती है। मासमधीतो नायातः= एक महीने तक पढ़ा परन्तु नहीं आया॥

१६९—सह शब्द या उस के पर्य्यायवाचक शब्दों का योग हो तो अप्रधान में तृतीया विभक्ति होती है। पुत्रेण सहागतः पिता= पुत्र के साथ पिता आया। शिष्येण सार्कं गत आचार्यः= शिष्यके साथ आचार्य गया॥

१७०—जिस विकृत अङ्ग से अङ्गी का विकार लक्षित होता हो उस से तृतीया विभक्ति होती है। यथा—अक्ष्णा काणः= आंख से काणा। शिरसा खल्वाटः =शिर से गंजा। पाणिना कुण्ठः=हाथ से लुंजा। इत्यादि

१७१-जिस लक्षण से जो पहचाना जावे उस से भी तृतीया विभक्ति होती है। यथा-जटाभिस्तापसः=जटाओं से तपस्वी। यज्ञोपवीतेन द्विजः=यज्ञोपवीत से द्विज। वेदाध्ययनेन विप्रः=वेदाध्ययन से ब्राह्मण

१७२-जिस के होने में जो कारण हो उसे हेतु कहते हैं। हेतुवाचक शब्दों से भी तृतीया होती है। यथा-विद्यया यशः =विद्या से कीर्त्ति। धर्मेण सुखम्=धर्म से सुख। धनेन कुलम्=धन से कुल॥

१७३-यदि कोई गुण हेतु हो तो उस से तृतीया और पञ्चमी दोनों विभक्तियां होती हैं स्त्रीलिङ्ग को छोड़ कर। यथा-ज्ञानेन मुक्तिः। ज्ञानान्मुक्तिः= ज्ञान से मुक्ति। अज्ञानेन बन्धः। अज्ञानाद्बन्धः। यहां ज्ञान और अज्ञान मुक्ति और बन्ध के हेतु हैं। स्त्रीलिङ्ग में तो तृतीया ही होती है यथा-प्रज्ञया मुक्तः। अविद्यया बद्धः =प्रज्ञा से छूट गया। अविद्या से बन्ध गया।

१७४-इन के सिवाय प्रकृति आदि शब्दों के योग में भी तृतीया विभक्ति होती है। यथा-प्रकृत्या दर्शनीयः= स्वभाव से दर्शनीय है। प्रायेण वैयाकरणः =प्रायः वैयाकरण है। गोत्रेण गार्ग्यः= गोत्र से गार्ग्य है। नाम्ना यज्ञदत्तः=नाम से यज्ञदत्त है। सुखेन वसति= सुख से रहता है। दुःखेन गच्छति= दुःख से जाता है। समेन मार्गेण धावति= सम मार्ग से दौड़ता है। विषमेण पथा याति=विषम मार्ग से जाता है। इत्यादि

४-सम्प्रदानम्

१७५-जिसके लिये कर्त्ता कर्म द्वारा क्रिया करे अर्थात्

कर्म से जिस का उपकार या उपयोग किया जाय उसे सम्प्रदान कारक कहते हैं और इस में सदा चतुर्थी विभक्ति होती है। यथा—विप्राय धनं ददाति= ब्राह्मण के लिये धन देता है। दीनेभ्योऽन्नं दीयते=दीनों के लिये अन्न दिया जाता है। केवल क्रिया से भी जिस का उपयोग किया जाय उसकी भी सम्प्रदान संज्ञा है। यथा—युद्धाय सन्नह्यते=युद्ध के लिये उद्यत होता है। अध्ययनाय यतते=अध्ययन के लिये यत्न करता है। कहीं २ पर कर्म की करण संज्ञा और सम्प्रदान की कर्म संज्ञा भी हो जाती है। यथा—हविषा देवान् यजते-हविः देवेभ्यो ददातीत्यर्थः= हविष्य से देवताओं का यजन करता है अर्थात् देवताओं के लिये हविष्य देता है ॥

१७६—जो पदार्थ जिस प्रयोजन के लिये है यदि उस से वही प्रयोजन सिद्ध होता हो तो उस को तादर्थ्य कहते हैं उस में चतुर्थी विभक्ति होती है। यथा—यूपाय दारु = यूप (यज्ञस्तम्भ) के लिये काष्ठ। कुण्डलाय हिरण्यम्=कुण्डल के लिये सोना। रन्धनाय स्थाली= रान्धने के लिये बटलोई। मुक्तये ज्ञानम् = मुक्ति के लिये ज्ञान। इत्यादि। क्लृपिधातु और उस के पर्याय वाचक धातुओं के प्रयोग में भी चतुर्थी विभक्ति होती है। यथा—मूत्राय कल्पते यवागूः = शिखरन मूत्र के लिये होती है। धर्माय संपद्यते सुकृतम् = शुभकर्म धर्म के लिये होता है। अधर्माय जायते दुष्कृतम्= अशुभ कर्म अधर्म के लिये होता है। हित शब्द के

योग में भी चतुर्थी होती है । ब्राह्मणेभ्यो हितम् । प्रजायै हितम् । उत्पात की सूचना में भी चतुर्थी विभक्ति होती है । यथा-वाताय कपिला विद्युदातपायातिलोहिनी । पीता वर्षाय विज्ञेया दुर्भिक्षाय सिता भवेत्=कपिल वर्ण की बिजली वायु के लिये, रक्त वर्ण की धूप के लिये,पीत वर्ण की वर्षा के लिये, और श्वेत वर्ण की दुर्भिक्ष के लिये होती है ॥

१७७-रुच्यर्थक धातुओं के प्रयोग में प्रीयमाण (प्रसन्न होने वाला) जो अर्थ है उस को भी सम्प्रदान संज्ञा है । यथा-बालकाय रोचते मोदकः =बालक को लड्डू रुचता है । ब्राह्मणाय स्वदते पायसम्=ब्राह्मण को खीर स्वादु लगती है ॥

१७८-स्पृह् धातु के प्रयोग में ईप्सित (चाहाहुवा) जो अर्थ है उस को भी सम्प्रदान संज्ञा होती है। यथा-पुष्पेभ्यः स्पृहयति=पुष्पों के लिये इच्छा करता है.

१७९-क्रुध, द्रुह्, ईर्ष्या और असूयार्थक धातुओं के प्रयोग में जिस के प्रति कोप किया जावे उस की सम्प्रदान संज्ञा होती है। यथा-छात्राय क्रुध्यति=शिष्य पर क्रोध करता है । शत्रवे द्रुह्यति=शत्रु से द्रोह करता है । संपन्नाय ईर्ष्यति=धनवान् की ईर्ष्या करता है । दुष्टाय असूयति=दुष्ट की निन्दा करता है ॥

१८०-यदि क्रियार्था क्रिया उपपद हो तो तुमुन् प्रत्यय के कर्म कारक में चतुर्थी विभक्ति होती है । यथा-फलेभ्यो याति । फलान्याहर्तुं यातीत्यर्थः=फलों के

लिये जाता है अर्थात् फलों के लेने को जाता है। यहां " आहर्तुम् " क्रियार्था क्रिया और " याति " सामान्य क्रिया है ॥

१८१–भाववचनान्त शब्दों से भी पूर्व अर्थ में चतुर्थी विभक्ति होती है। यथा–यागाय याति। यष्टुं यातीत्यर्थः= यज्ञ के लिये जाता है अर्थात् यज्ञ करने को जाता है। अध्ययनाय गच्छति। अध्येतुं गच्छतीत्यर्थः = पढ़ने को जाता है ॥

१८२–नमः, स्वस्ति, स्वाहा, स्वधा, अलम् और वषट् इन अव्ययों के योग में भी चतुर्थी विभक्ति होती है। यथा–देवेभ्यो नमः। प्रजाभ्यः स्वस्ति। अग्नये स्वाहा। पितृभ्यः स्वधा। वषडिन्द्राय। अलं नकुलः सर्पाय= सर्प के लिये नकुल समर्थ है। अलं सिंहो नागाय= हाथी के लिये सिंह समर्थ है ॥

१८३–प्राणिवर्जित मन धातु के कर्म कारक में यदि अनादर सूचित होता हो तो विकल्प से चतुर्थी विभक्ति होती है। पक्ष में द्वितीया भी होती है। यथा–अहं त्वां तृणं मन्ये। अहं त्वां तृणाय मन्ये=मैं तुझ को तृण के बराबर समझता हूं। प्राणी कर्म हो तो द्वितीया ही होगी। अहं त्वां शृगालं मन्ये= मैं तुझको शृगाल समझता हूं। जहां अनादर न हो वहां भी द्वितीया ही होगी। यथा–अश्मानं दृषदं मन्ये मन्ये काष्ठमुलूखलम्=मैं पत्थरको पत्थर मानता हूं और उलूखल को काष्ठ मानता हूं।

५-अपादानम्

१८४-जो पृथक् करने वाला कारक है उसे अपादान कहते हैं। अपादान में सदा पञ्चमी विभक्ति होती है। यथा-पर्वतादवतरति=पर्वत से उतरता है। वृक्षात्पर्णानि पतन्ति=वृक्ष से पत्र गिरते हैं। यहां पर्वत और वृक्ष से कर्ता अलग होता है इसलिये इनकी अपादान संज्ञा हुई। जुगुप्सा, विराम और प्रमाद अर्थ में भी अपादान कारक होता है यथा-पापाज्जुगुप्सते=पाप से निन्दित होता है। श्रमाद्विरमति=परिश्रम से विराम करता है। धर्मात्प्रमाद्यति=धर्म से प्रमाद करता है॥

१८५-भय और रक्षार्थक धातुओं के प्रयोग में जो भय का हेतु हो उसकी अपादान संज्ञा है। यथा-चोराद्बिभेति=चोर से डरता है। व्याघ्रादुद्विजते=सिंह से कांपता है। चोरेभ्यस्त्रायते= चोरों से बचाता है। हिंसकाद्रक्षति= हिंसक से रक्षा करता है॥

१८६-परापूर्वक 'जि' धातु के प्रयोग में असह्य जो अर्थ है उसकी अपादान संज्ञा होती है। यथा—अध्ययनात्पराजयते= पढ़ने से भागता है। पौरुषात्पराजयते= पुरुषार्थ से भागता है। सह्य अर्थ में कर्म संज्ञा होगी। शत्रून्पराजयते=शत्रुओं को हराता है॥

१८७-निवारणार्थक धातुओं के प्रयोग में ईप्सित (चाहा हुवा) जो अर्थ है उसकी भी अपादान संज्ञा होती है।

यथा-क्षेत्रात् गां वारयति= क्षेत्र से गाय को निवारण करता है। पाकालयात् श्वानं निवर्तयति। पाकालय से कुत्ते को हटाता है॥

१८८-नियमपूर्वक विद्या ग्रहण करने में व्याख्याता की अपादान संज्ञा होती है। यथा-उपाध्यायादधीते= उपाध्यायसे पढ़ताहै। वक्तुः शृणोति=वक्तासे सुनता है

१८९-जनी धातु के कर्त्ता का जो कारण है उसकी भी अपादान संज्ञा है। यथा-शृङ्गाच्छरो जायते=सींग से बाण बनाया जाता है। गोमयाद् वृश्चिको जायते= गोबर से बिच्छू उत्पन्न होता है॥

१९०-भू धातु के कर्त्ता का जो प्रभव (उत्पत्तिस्थान) है उसकी भी अपादान संज्ञा है। यथा-हिमवतः गङ्गा प्रभवति=हिमवान् से गङ्गा उत्पन्न होती है। आकराद्धिरण्यं प्रभवति=खान से सोना पैदा होता है॥

१९१-ल्यब् प्रत्यय का लोप होने पर कर्म और अधिकरण कारक में भी पञ्चमी विभक्ति होती है। कर्म में-प्रासादमारुह्य प्रेक्षते=प्रासादात्प्रेक्षते=महल पर चढ़कर देखता है अर्थात् महल से देखता है। अधिकरण में-आसने उपविश्य प्रेक्षते=आसनात्प्रेक्षते= आसन पर बैठ कर देखताहै अर्थात् आसनसे देखता है। प्रश्नऔर उत्तर के प्रसङ्ग में भी पञ्चमी विभक्ति होती है। यथा-कुतो भवान्=कहां से आप? पाटलिपुत्रात्=पटने से। जहां से मार्ग का परिमाण निर्धारण किया जाय वहां भी पञ्चमी होती है-

हस्तिनापुरादिन्द्रप्रस्थं पञ्चदशयोजनपरिमितम्=
हस्तिनापुर से इन्द्रप्रस्थ पन्द्रह योजन है ॥

१९२-अप आङ् और परि इन कर्मप्रवचनीयों के योग में भी पञ्चमी विभक्ति होती है। अप और परि वर्जन अर्थ में और आङ् मर्य्यादा अर्थ में कर्मप्रवचनीय संज्ञक होते हैं। यथा——अप त्रिगर्त्तेभ्यो वृष्टः। परि त्रिगर्त्तेभ्यो वृष्टः=त्रिगर्त्त देशों को छोड़कर बर्सा। आपाटलिपुत्रात् वृष्टः=पटने तक बर्सा। आमुक्तेः संसारः=मुक्ति होने तक संसार है ॥

१९३-प्रतिनिधि और प्रतिदान अर्थ में प्रति उपसर्ग की कर्मप्रवचनीय संज्ञा होती है, जिस से प्रतिनिधि और प्रतिदान विधान कियेजावें उसकी भी अपादान संज्ञा होती है। प्रतिनिधि-कृष्णः पाण्डवेभ्यः प्रति=कृष्ण पाण्डवों की ओर से प्रतिनिधि है। प्रतिदान-तिलेभ्यः प्रतियच्छति माषान् =तिलोंके बदले उड़द देता है ॥

१९४-अन्य, आरात्, इतर, ऋते और दिक् शब्दों के योग में भी पञ्चमी होती है। यथा-त्वदन्यः=तुझ से अन्य। मद्भिन्नः=मुझ से भिन्न। यस्मादारात्= जिससे समीप। तस्मादितरः=उस से और। ऋते ज्ञानात्=ज्ञान के विना। पूर्वो ग्रामात्=ग्राम से पूर्व। उत्तरो ग्रामात्=ग्राम से उत्तर। पूर्वो ग्रीष्माद् वसन्तः=वसन्त ग्रीष्म से पहिला है। उत्तरो ग्रीष्मो वसन्तात्=ग्रीष्म वसन्त से पिछला है ॥

१९५–पृथक्, विना और नाना शब्दों के योग में तृतीया और पञ्चमी दोनों होती हैं। यथा–पृथग्देवदत्तेन। पृथग्देवदत्तात्। इसी प्रकार विना और नाना में भी समझो॥

१९६–अद्रव्यवाचक स्तोक, अल्प, कृच्छ्र और कतिपय शब्दों के करण कारक में तृतीया और पञ्चमी दोनों विभक्ति होती हैं। यथा–स्तोकेन मुक्तः। स्तोकान्मुक्तः=थोड़े से छूटगया। द्रव्यवाचकों में तो तृतीया ही होगी। यथा–स्तोकेन विषेण हतः=थोड़े से विष से मरगया। अल्पेन मधुना मत्तः=थोड़ीसी मदिरा से उन्मत्त होगया॥

१९७–दूर और समीप वाचक शब्दों में पञ्चमी और षष्ठी विभक्ति होती हैं। यथा–दूरं ग्रामात्। दूरं ग्रामस्य=ग्राम से दूर। समीपं ग्रामात्। समीपं ग्रामस्य=ग्राम के समीप।

६–शेषः

१९८–कर्मादि कारकों से भिन्न जो स्वत्व और सम्बन्ध आदि का सूचक हो वह शेष है और उस में सदा षष्ठी विभक्ति आती है। यथा–राज्ञःपुरुषः= राजा का पुरुष। गुरोः शिष्यः=गुरु का शिष्य। पितुः पुत्रः=पिता का पुत्र॥

१९९–हेतु शब्द के प्रयोग में षष्ठी विभक्ति होती है। यथा–अन्नस्य हेतोर्वसति=अन्न के हेतु वसता है। सर्वनाम के साथ हेतु शब्द के प्रयोग में तृतीया और षष्ठी दोनों विभक्तियां होती हैं। यथा–केन हेतुना वसति, कस्य हेतोर्वसति=किस लिये वसता है?

२००-स्मरणार्थक धातुओं के कर्म कारक में षष्ठी विभक्ति होती है। यथा-मातुः स्मरति=मातरं स्मरतीत्यर्थः=माता को स्मरण करता है ॥

२०१-कृञ् धातु के कर्म कारक में यदि उस का संस्कार कर्तव्य हो तो षष्ठी विभक्ति होती है। यथा-उदकस्योपस्कुरुते=उदकं संस्करोतीत्यर्थः=जल को साफ़ करता है ॥

२०२-ज्वरि और सन्तापि धातु को छोड़कर भाववाचक रोगार्थक धातुओं के कर्म कारक में षष्ठी विभक्ति होती है। यथा-अपथ्याशिनः रुजति रोगः=अपथ्याशिनं रोगः रुजतीत्यर्थः=बदपरहेज़ को रोग सताता है। ज्वरि और सन्तापि धातु के प्रयोग में तो द्वितीया ही होगी। यथा—निर्बलं ज्वरयति ज्वरः=निर्बल को ज्वर सताता है। अविमृश्यकारिणं सन्तापयति तापः=बिना सोचे काम करने वाले को ताप तपाता है ॥

२०३-व्यवहृ, पण और दिव् धातु यदि समानार्थक हों तो इन के कर्म कारक में षष्ठी विभक्ति होती है। द्यूत और क्रय विक्रय व्यवहार में इन की समानार्थता होती है-शतस्य व्यवहरति। शतस्य पणते। शतस्य दीव्यति=सौ का जुवा खेलता है वा सौ का व्यवहार करता है ॥

२०४-कृत्वोऽर्थप्रत्ययों के प्रयोग में काल अधिकरण हो तो उस में षष्ठी विभक्ति होजाती है। यथा-द्विरह्नो भुङ्क्ते=दिन में दो वार खाता है। पञ्चकृत्वोऽह्नोऽधीते=दिन में पांचवार पढ़ता है ॥

२०५-कृत् प्रत्ययों के योग में कर्ता और कर्म दोनों कारकोंमें षष्ठी विभक्ति होती है। कर्ता में-पाणिनेःकृतिः= पाणिनि की रचना। गाथकस्य गीतिः=गायक का गाना। कर्म में-अपां स्रष्टा=जलों का बनाने वाला। पुरां भेत्ता=नगरों का भेदन करने वाला॥

२०६-जिस कृत् प्रत्यय के प्रयोग में कर्ता और कर्म दोनों की प्राप्ति हो वहां केवल कर्म में ही षष्ठी हो, कर्ता में नहीं। यथा-रोचते मे ओदनस्य भोजनं देवदत्तेन= मुझे चावल का भोजन देवदत्त से रुचता है। यहां देवदत्त कर्त्ता में तृतीया ही रही परन्तु ओदन कर्म में षष्ठी होगई॥

२०७-वर्त्तमान काल में विहित जो 'त' प्रत्यय है उस के योग में षष्ठी विभक्ति होती है यथा—राज्ञां मतः= राजाओं का माना हुवा। विदुषां बुद्धः=विद्वानों का जाना हुआ। भूत काल में द्वितीया होगी। ग्रामं गतः=ग्राम को गया। नपुंसकलिङ्ग में भावविहित 'त' प्रत्ययके योगमें षष्ठी होती है। यथा=छात्रस्य हसितम्= शिष्य का हंसना। मोरस्य नृत्तम्=मयूर का नाचना। कर्ता की विवक्षा में तृतीया भी होगी- छात्रेण हसितम्=छात्र ने हंसा। मयूरेण नृत्तम्=मोर ने नाचा॥

२०८-कृत्यसंज्ञक प्रत्ययों के प्रयोग में कर्ता में षष्ठी विकल्प से होती है पक्ष में तृतीया होती है-त्वया करणीयम्= तव करणीयम्=तुझ को करना चाहिये।

२०९-तुल्यार्थवाचक शब्दों के योग में तृतीया और षष्ठी विभक्ति होती हैं तुला और उपमा शब्दों को छोड़

कर। यथा—तेन तुल्यः=तस्य तुल्यः=उस के बराबर। केन सदृशः=कस्य सदृशः=किस के बराबर। तुला और उपमा शब्दों के योग में केवल षष्ठी ही होगी। यथा-ईश्वरस्य तुला नास्ति। तस्योपमापि न विद्यते=ईश्वर की तुला नहीं है, उसकी उपमा भी नहीं है।

२१०—आशीर्वाद अर्थ हो तो आयुष्य, मद्र, भद्र, कुशल, सुख, अर्थ और हित इन शब्दों के योग में चतुर्थी और षष्ठी विभक्ति होती हैं। यथा-आयुष्यं ते भूयात्, आयुष्यन्तव भूयात्=तेरी वा तेरे लिये बड़ी आयु हो। भद्रं ते भूयात्, भद्रं तव भूयात्=तेरा वा तेरे लिये कल्याण हो। इत्यादि॥

७—अधिकरणम्

२११—जिस में जाकर क्रिया ठहरे अर्थात् क्रिया के आधार को अधिकरण कहते हैं और इस में सदा सप्तमी विभक्ति होती है। अधिकरण तीन प्रकार का है-१ औपश्लेषिक—शकटे आस्ते=गाड़ी में बैठा है। कटे शेते=चटाई पर सोता है। स्थाल्यां पचति=बटलोई में पकाता है। इत्यादि। यहां गाड़ी और चटाई में कर्त्ता का और बटलोई में कर्म का श्लेष मात्र है। २-वैषयिक-व्याकरणे निपुणः=व्याकरण में निपुण। सदसि वक्ता=सभा में बोलने वाला। धर्मेऽभिनिवेशः=धर्म में प्रवेश। इत्यादि। यहां व्याकरण, सभा और धर्म विषय मात्र हैं। ३-अभिव्यापक-तिलेषु तैलम्। दधनि घृतम्। सर्वस्मिन्नात्मा। इत्यादि। यहां तिलों में तेल, दही में घृत और सब में आत्मा व्यापक हैं॥

२१२–निमित्त (हेतु) से कर्म का संयोग होने पर भी सप्तमी विभक्ति होती है। यथा–" चर्मणि द्वीपिनं हन्ति दन्तयोर्हन्ति कुञ्जरम् । केशेषु चमरीं हन्ति सीम्नि पुष्कलको हतः " ॥ चर्म के हेतु गेंडे को मारते हैं, दान्तों के निमित्त हाथी को, केशों के लिये चामर मृग को मारते हैं और कस्तूरी के कारण पुष्कलक मृग मारा जाता है। यहां हेतु में तृतीया को रोक कर सप्तमी हुई ॥

२१३–जिस की क्रिया से क्रियान्तर लक्षित हो उस से सप्तमी विभक्ति होती है। यथा–गोषु दुह्यमानासु गतः।दुग्धास्वागतः=गायों के दुहे जाते हुवे गया था। दुहे जाने पर आगया । अग्निषु हूयमानेषु गतः । हुतेष्वागतः= अग्नि में हवन होते हुवे गया था, हवन हो चुकने पर आगया ॥

२१४–अनादर सूचित होता हो तो जिस की क्रिया से क्रियान्तर लक्षित हो उस से षष्ठी और सप्तमी दोनों विभक्तियां होती हैं। यथा–रुदतः प्राव्राजीत् । रुदति प्राव्राजीत्=रोते हुवे का अनादर करके चला गया ॥

२१५–स्वामिन्, ईश्वर, अधिपति, दायाद, साक्षिन्, प्रतिभू, और प्रसूत इन सात शब्दों के योग में षष्ठी और सप्तमी दोनों विभक्तियां होती हैं । यथा– गवां स्वामी । गोषु स्वामी । इत्यादि ॥

२१६–जिस से निर्धारण किया जाय उस से षष्ठी और सप्तमी दोनों विभक्तियां होतीहैं।जाति,गुण और क्रिया द्वारा समुदाय से एक देशका पृथक् करना निर्धारण कहलाता है। जाति–मनुष्याणां मनुष्येषु वा ब्राह्मणः

श्रेष्ठतमः= मनुष्यों में ब्राह्मण श्रेष्ठतम है । गुण-गवां गोषु वा कृष्णा सम्पन्नक्षीरतमा=गायों में काली गाय अधिक दूधवालीहोती है। क्रिया-अध्वगानाम् अध्वगेषु वा धावन्तः शीघ्रतमाः=मार्ग चलने वालों में दौड़ने वाले शीघ्रगामी हैं । परन्तु जहां निर्धारण में विभाग हो वहां पञ्चमी विभक्ति होती है । यथा- पञ्चालाः पाटलिपुत्रेभ्यो दृढतराः = पञ्जाबी पटने वालों से दृढ़ होते हैं । वाङ्गाः पञ्चालेभ्यः सुकुमार-तराः । बङ्गाली पञ्जाबियों से नाजुक होते हैं ॥

११७-दो कारकों के बीच में यदि काल और मार्ग वाचक शब्द हों तो उन से पञ्चमी और सप्तमी विभक्ति होती है । यथा-अद्य भुक्त्वाऽयं द्व्यहे द्व्यहाद्वा भोक्ता= आज खाकर यह दोदिन में खावेगा। यहां दो कारकों के बीच में काल है । धनुर्मुक्तोऽयमिष्वासः क्रोशे क्रोशाद्वा लक्ष्यं विध्यति=धनुष् से छूटा हुवा यह बाण एक क्रोश में निशाने को बीन्धता है । यहां दो कारकों के बीच में मार्ग है ॥

११८-कर्मप्रवचनीयसंज्ञक उप और अधि उपसर्गों के योग में सप्तमी विभक्ति होती है । अधिकार्थ में उप की और स्वाम्यर्थ में अधि की कर्मप्रवचनीय संज्ञा होती है। यथा-उपनिष्के कार्षापणम्=निष्क से कार्षापण अधिक होता है । अधि भारतीयेषु हरिवर्षीयाः=इण्डियन लोगों से यूरोपियन समर्थ हैं ॥

इति कारकाणि

समाप्तश्चायं प्रथमोभागः ॥ १ ॥

विषयानुक्रमः

उपनिषदों का सरल भाषानुवाद

उपनिषदों की प्रशंसा हम क्या करें, सारा संसार कर रहा है, ब्रह्मविद्या की वह पवित्र धारा जिसने अरब जैसे मरुदेश और यूरोप जैसे विषम देशों को भी अपने आप्लावन से सुसिक्त और रम्य बना दिया, इन्हीं उपनिषदों के पवित्रस्रोत (चश्मे) से निकली है, उपनिषदों के यद्यपि आजतक भाषा में भी कई अनुवाद हो चुके हैं, तथापि किसी ऐसे अनुवाद की अब तक बड़ी आवश्यकता थी, जिस में सरल और सुगम रीति से अन्वयपूर्वक मूल का अर्थ दिया हो, पुनः संक्षेप से उसका भाव जो मूल के आशय को पुष्ट एवं स्पष्ट करता हो, दिया गया हो। तथा भाषा उसकी सरल, सुबोध और प्रचलित भाषाप्रणाली के अनुसार हो। यह अनुवाद इन सब गुणों से अलंकृत है—ईश ~) केन ~)॥ कठ ।) प्रश्न ।) बढ़िया ।~) मुण्डक ≡)

अबलासन्ताप

वर्त्तमान में स्त्रीशिक्षा के न होने से जैसी कुछ दुर्दशा हमारी और हमारी सन्तान की हो रही है, उसी का निदर्शन इस पुस्तक में किया गया है। स्त्रीपुरुष दोनों के लिये यह पुस्तक बड़ा उपयोगी है॥ मूल्य ≡)

बुकसेलरों को उचित कमीशन भी दिया जाता है॥

मिलने का पता—

स्वामी प्रेस मेरठ शहर

वा सरस्वती पुस्तकालय मेरठ